गद्य-सौरभ

भाग—१

प्रकाशक
दक्षिण भारत हिन्दुस्तानी प्रचार सभा
त्यागरायनगर, मद्रास

गद्य-सौरभ

भाग—१

Bharatiya Vidya Bhawan's Sri Sankaracharya Sanskrit Mahavidyalaya
782

प्रकाशक

दक्षिण भारत हिन्दुस्तानी प्रचार सभा,

त्यागरायनगर, मद्रास

सर्वाधिकार सुरक्षित] 1950 [दाम 1-4-0

हिन्दुस्तानी प्रचार पुस्तक-माला, पुष्प—९२.

1—22
पु—अक्तूबर—1950
10

Bhawan's Sri Sankaracharya Sanskrit Mahavidyalaya
782

हिन्दुस्तानी प्रचार प्रेस, त्यागरायनगर, मद्रास

यह संग्रह

इस संग्रह में कुछ नामी लेखकों के लेख दिये गये हैं। इसके संपादन में सभा की राष्ट्रभाषा परीक्षा, मद्रास सरकार का स्कूल फॉइनल, विद्वान एन्ट्रेन्स व इंटरमीडिएट परीक्षाओं की श्रेणी का ख़्याल रक्खा गया है।

विद्यार्थियों की सहूलियत को दृष्टि में रखकर हर पाठ के आरंभ में लेखक का परिचय व अन्त में कठिन-शब्दार्थ दिये गये हैं। आशा है कि संग्रह पाठकों व राष्ट्रभाषा के प्रेमियों को पसंद आयगा।

सभा की तरफ़ से प्रकाशित अन्य संग्रहों को जिस तरह अपनाकर पाठकों ने प्रोत्साहित किया था उसी तरह इसे भी अपनायेंगे ही।

जिन लेखकों की कृतियाँ इस संग्रह में दी गयी हैं, उनके हम कृतज्ञ हैं।

—प्रकाशक

विषय-सूची

पृष्ठ

१. आज़ादी का गीत—
'रहबर' बी. ए. ... १

२. हीरा और कोयला—
श्री रायकृष्णदास ... ६

३. कौशल—
श्री प्रेमचन्द ... ११

४. अकबर का सुशासन—
श्री राधाकृष्ण झा, एम. ए. ... १९

५. बेला का ब्याह—
आचार्य चतुरसेन शास्त्री ... २५

६. विश्वविजयी गामा—
पं. मोहनलाल महतो 'वियोगी' ... ३०

७. बापू के दर्शन—
आचार्य कृपलानी ... ४२

८. काकी—
श्री सियाराम शरण गुप्त ... ५१

९. राड़ की जड़ हाँसी—
श्री घनश्यामदास बिड़ला ... ५६

१०. इलाहाबादी अमरूद—
शौक़त थानवी ... ६२

११. नेपाल—
श्री शिवपूजन सहाय ... ७५

१२. कवि सम्राट रवीन्द्रनाथ ठाकुर—
प्रो. सद्‌गुरुशरण अवस्थी, एम. ए. ... ८७

१३. पसीने की पुत्री—
श्री रामचन्द्र तिवारी ... ९९

१४. स्त्री-शिक्षा के उद्देश्य—
श्रीमती चंद्रावती लखनपाल, एम.ए., बी. टी. ... १२९

परिशिष्ट

लक्ष्मी का स्वागत—
श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' ... १३५

आज़ादी का गीत

'रहबर' बी. ए.

[रहबर साहब उर्दू के अच्छे लेखकों में हैं। आपकी क़लम में देश-भक्ति का जोश-खरोश बहुत रहता है।

"आज़ादी का गीत" एक भवात्मक गद्य है। इसमें लेखक ने तोते के बहाने ग़ुलाम देश और जाति की दशा का बड़ा ही सुन्दर चित्र खींचा है। तोते को इन्सान पिंजड़े में बन्द कर रखता है। उसे मीठे फल खिलाता और अपनी बोली सिखाता है। उसी तरह एक देश को दूसरे देश के लोग अपने अधिकार में करके वहाँ के लोगों को अपनी भाषा सिखाकर छोटी-मोटी नौकरियाँ देकर ख़ुश रखने की कोशिश करते हैं। कुछ लोग तो उसी में ख़ुश भी हो जाते और आज़ादी को भूल जाते हैं। मगर उन्हें जगाना तो है ही।]

कदम्ब के वृक्ष पर एक बूढ़ा तोता और एक मैना अपनी चोंच परों में छुपाये हुए बैठे थे। चारों तरफ़ ख़ामोशी छायी थी, जिसकी झलक उनके उदास चेहरों पर दिखायी देती थी।

"दादा, क्या वे आज भी नहीं आयेंगे?" मैना ने ख़ामोशी तोड़कर पूछा।

"नहीं, बेटी! अब उनके वापस आने की कोई आशा नहीं"—बूढ़े तोते ने जवाब दिया।

"आख़िर इसका सबब?"

"सबब ? देखती नहीं कि हममें से दो-चार, दस-पाँच, हर रोज़ कम हो जाते हैं ?"

"देखती हूँ। मगर वे कहाँ जाते हैं ?"

"जाना कहाँ था ?" बूढ़े ने लम्बी साँस छोड़ते हुए कहा—"इस संसार में मनुष्य नाम का एक जीव है, जो अपने आपको सर्वश्रेष्ठ और सभ्य समझता है। वह हमारे भाई बन्धुओं को शायद सभ्यता सिखाने के लिए—लेकिन मैं समझता हूँ अपना दिल बहलाने के लिए—पकड़कर ले जाता है और फिर आने नहीं देता।

"मगर वे उसके पास रहते ही क्यों हैं ?"

"रहने की बात जाने दो बेटी। वे अपनी खुशी से थोड़े ही रहते हैं। यह उन्हें लोहे के पिंजड़ों में बंद करके रखता है।"

"लोहे के पिंजड़ों में ?" मैना ने यह शब्द दुहराये और उसका शरीर थर-थर काँपने लगा। उसने तनिक ठहरकर पूछा, "इनसान उन्हें फिर कभी नहीं छोड़ता ?"

"नहीं, कभी नहीं।"

"क्या उस वक़्त भी नहीं जब आम के वृक्षों में केरियाँ फूटती हैं ? क्या उस वक़्त भी नहीं जब जंगली बेरियों के बेर पकते हैं ? और क्या उस वक़्त भी नहीं जब ज्वार और बाजरे के भुट्टों में दाने पड़ने शुरू होते हैं....क्या वे उस वक़्त भी बन्द रहते हैं, दादा ?"

"हाँ, बेटी! वे उस वक़्त भी बन्द रहते हैं।" मैना की बेचैनी बढ़ती जाती थी। वह दुख से व्यग्र होकर इधर-उधर हिली और बोली—"फिर दादा, वे गीत जो हम जंगल की खुली हवा में उड़ते हुए गाते हैं, क्या उन्हें वे भूल जाते हैं? वह संगीत जो हम वसन्त-बाला को सुनाया करते हैं, क्या उन्हें याद नहीं आता?"

"याद तो बहुत आता है, बेटी! मगर........?"

"मगर का क्या मतलब, दादा; तुम चुप क्यों हो गये? बताओ मगर क्या होता है?"

"मगर ये गीत उन्हें पिंजड़े में कुछ ही दिन तक याद आते हैं, फिर इन्सान अपनी ही भाषा में और ही कुछ सिखा लेता है।"

"अपनी भाषा में और ही कुछ? वे उसे सीखते ही क्यों हैं?"

"अपना पेट भरने के लिए और इन्सान को खुश करने के लिए।"

अब मैना चुप रही, शायद वह सोचती थी कि मैं उन्हें कभी न सीखूँ। बूढ़ा तोता ख़ूब समझता था कि इस जवाब से मैना को तसल्ली नहीं हुई। इसलिए उसने फिर कहना शुरू किया "बेटी! तू नहीं समझती, इन्सान बहुत चालाक होता है।

पहले मीठी मीठी बातों से तोतों का मन बहलाता है। उन्हें "गंगाराम" और "मियाँ मिट्ठू" के ख़िताब देता है। और फिर पूछता है, "क्यों मियाँ मिट्ठू, चूरी खाओगे?" वे बेचारे भूख के मारे चोंचें खोलकर कहने लगते हैं "चूरी, चूरी, चूरी।" इसके बाद दूसरा पाठ आरम्भ होता है। "सीताराम, दशरथ," "अल्लाहो अकबर," जिसको जैसा चाहे वैसा सिखा लेता है। जब हमारे मज़बूर और बेबस भाई अपनी बनावटी आवाज़ में इन शब्दों को दोहराते हैं तो इन्सान प्रसन्नता से फूल जाता है। वह समझता है कि उसने एक पक्षी को ख़ुदा का नाम (जिसकी बाबत वह ख़ुद भ्रम में पड़ा हुआ है) लेना सिखा दिया। और वे इन्हीं शब्दों के फेर में पड़कर रह जाते हैं। इस प्रकार कुछ दिनों में अपना सब संगीत भूल जाते हैं। तब उन्हें इतना भी ज्ञान नहीं रहता कि वे पिंजड़े के क़ैदी पैदा हुए हैं या जंगल के वासी।"

"अच्छा, दादा! मुझे ऐसा गीत—आज़ादी का गीत—सिखाओ जिसे मैं शहर-शहर और गाँव-गाँव घूमकर सब तोतों को सुनाऊँ और जिसे वे फिर कभी न भूलें।"

"लेकिन इससे क्या लाभ होगा, बेटी? इन्सान उन्हें अब कभी न छोड़ेंगे।"

"नहीं छोड़ेंगे तो न सही, उनमें आज़ादी का भाव तो जाग ही जायगा। छूट नहीं सकेंगे तो पिंजड़े की सलाखों से

सिर पटककर मर ही जायेंगे ताकि इन्सान को पता चले कि तोते अब गुलामी का जीवन पसन्द नहीं करते और वह आगे के लिए हमारी जाति को पकड़ना छोड़ दें।"

यह सोचकर वे दोनों उड़े। और दूर-दूर, बहुत दूर चले गये, जंगलों, पर्वतों और घाटियों में आज़ादी का गीत ढूँढ़ने के लिए।

ख़ामोशी - शान्ति
सबब - कारण
इनसान - मनुष्य
केरियाँ - आम का छोटा, नया व कच्चा फल
भुट्टा - ज्वार या बाजरे की बाल
व्यग्र - व्याकुल
तसल्ली - शान्ति
ख़िताब - पद
चूरी - चूरमा, रोटी को पीस कर शक्कर मिला हुआ
फेर - भ्रम
सलाख - छड़, तीलियाँ
"गंगाराम" "मियाँ मिट्ठू" वग़ैरह नाम तोतों को पालनेवाले देते हैं।

हीरा और कोयला

श्री० रायकृष्णदास

[जन्म १८९२ ई० ; स्थान—बनारस। आप भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के रिश्तेदारों में हैं। बड़े कला-मर्मज्ञ हैं। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के कला भवन के निर्माता हैं। अंग्रेज़ी और संस्कृत के अच्छे विद्वान हैं। आप गद्य काव्य के अच्छे लेखक हैं। चित्रकला और मूर्तिकला के अच्छे जानकार और आलोचक हैं। भारतीय इतिहास की खोज में आपने बड़ी मदद दी है। कहानियाँ लिखने में भी आप सिद्धहस्त हैं।

इस बातचीत में आपने "हीरा और कोयला" के बहाने यह बताने की कोशिश की है कि बाहरी रूप-रंग प्रधान नहीं, गुण ही प्रधान है।]

हीरा—मेरे पास तू कैसे?

कोयला—क्यों? तेरा और मेरा तो जनम का साथ है!

हीरा—जनम का साथ है? चल, हट, दूर हो यहाँ से!

कोयला—झूठ मानता है? अरे, हम सगे भाई हैं!

हीरा—क्या कहता है? अभी तक जनम का साथी बनता था, अब भाई बनने लगा। मैं गोरा चिट्टा, तू काला कलूटा। भला कौन कहेगा कि तू मेरा भाई है?

कोयला—अरे! मैं तेरा सगा ही नहीं, सगा बड़ा भाई हूँ। एक ही पेट से पहले मेरा जनम होता है, तब तेरा।

हीरा—तभी न हम दोनों एक-से हैं!

कोयला—यह तो ईश्वरी देन है। क्या देव और दानव भाई नहीं?

हीरा—सोलह आने सच। लेकिन दानव तू ही हुआ, क्योंकि तू मेरा बड़ा बनता है।

कोयला—कौन दानव है और कौन देव, यह तो कर्म से विदित होगा। अपने मुँह से कहने की क्या आवश्यकता है?

हीरा—अच्छा, रहने दे अपनी पंडिताई! आ, हम अपनी-अपनी करनी तो देख लें कि तू बड़ा भाई होने योग्य है कि नहीं?

कोयला—बहुत ठीक, बहुत ठीक, तुझे ही अपनी बड़ाई का बड़ा घमंड है; तू ही अपने गुन कह चल।

हीरा—पहले तो मेरा रूप ही देख। मैं जहाँ रहता हूँ—सूरज की तरह चमकता हूँ! रंग-बिरंगी किरणें मुझमें से निकला करती हैं। देखनेवालों की आँखें खुल जाती हैं, तबीयत हरी हो जाती है।

कोयला—क्या कहना है! तू तो एक कंकड़-जैसा खान के बाहर आता है; वह तो हीरा-तराश है जो तुझे यह कृत्रिम रूप देता है! तेरा अपना प्रकाश कहाँ? तुझपर तो जैसी छाया और आभा पड़ी, वसा ही बन जाता है—'गंगा गये गंगादास, जमुना गये जमुनादास।'

हीरा—पूरी बात तो सुन ले! सुन—मैं राज-राजेश्वरों के सिर पर बैठता हूँ। सुन्दरियों का आभूषण बनता हूँ..........

कोयला—हाँ, तू अपने कारण सम्राटों के सिर कटाता है। बड़े-बड़े राज तहस-नहस करा डालता है। तू सुंदरियों की सहज रमणीयता पर भी अपने बनावटीपन से पानी फेरता है—

हीरा—मैं बड़े-बड़े राज-कोषों में कितनी रक्षा से रक्खा जाता हूँ! मेरे लिए पहरा-चौकी लगती है! तेरे जैसा मारा-मारा नहीं फिरता।

कोयला—क्या ख़ूब! नित्य बंदी बनकर सौ-सौ तालों में बन्द होकर सोने की काँटेदार बेड़ियों में जकड़ा जाकर, तू अपने को बड़ा समझे तो समझ। तेरी बुद्धि को बलिहारी है! मैं तो स्वतंत्रता-पूर्वक दर-दर घूमना ही जीवन की धन्यता समझता हूँ।

हीरा—तू रहा सदा का जलनेवाला। तू दूसरे का उत्कर्ष कब देख सकता है?

कोयला—हाँ, मैं जलता हूँ, किन्तु दूसरों के लिए—मैं अपने कारण दूसरों को तो नहीं जलाता। मैं जलकर ग़रीबों की भी ज़रूरतें पूरी करता हूँ—लोगों को विभूति देता हूँ।

हीरा—हाँ, इसीलिये न कि वे मुझे खरीदें?

कोयला—क्योंकि मैं तो तुझे छोटा भाई समझकर तेरी

प्रतिष्ठा ही चाहता हूँ। पर तू तो ठहरा वज्र। तुझे इसका ध्यान कहाँ!

हीरा—रहने दे अपनी उदारता। मैं उन बातों में आकर मार्ग नहीं छोड़ने का।

कोयला—मैं तुझे यही तो चिताना चाहता हूँ, तेरे दिन अब पूरे हो चले,—संसार शीघ्र ही वह दिन देखनेवाला है, जब तेरी पूछ ही न रह जायगी।

हीरा—जब वह समय आवेगा तब देखा जायगा। मैं बीच में ही अपना पद-त्याग क्यों करूँ?

कोयला—अच्छा मेरे अनुज, मैं जी से तुझे आशीर्वाद देता हूँ—ईश्वर तुझे सुबुद्धि दे।

हीरा—आः क्या दैव-गति ऐसी ही है कि मैं तेरा अनुज होऊँ! और तू—कोयला—मेरा अग्रज?

कोयला—हाँ, यह एक घटना है जिसे हम मिटा नहीं सकते।

हीरा—तो क्या मनुष्य के पूर्वज बन्दर नहीं थे?

कोयला—यह तो तेरे जैसे पारदर्शी ही जाने, मैं अन्ध-हृदय इन गूढ़ विषयों को क्या समझूँ?

हीरा—चाहे जैसा भी हो, तूने अपने हृदय का कालापन तो स्वीकार किया। तेरी इस हार के आगे मैं अपना सिर झुकाता हूँ।

कोयला—और मैं भी अपने उसी आन्तरिक अन्धकार से, जो आलोक का कारण है—तुझे फिर असीसता हूँ कि ईश्वर तुझे सुबुद्धि दे।

आँखें खुल जाना - ज्ञान का आना, अचरज होना
तबीयत हरी होना - मन खुश होना
हीरा-तराश - हीरा काटनेवाला
आभा - प्रकाश
गंगा गये गंगादास, जमना गये जमनादास - समय के अनुसार बदलनेवाला
तहस-नहस - नष्ट-भ्रष्ट
सोने की काँटेदार बेड़ियां - हीरा सोने की कीलों में ही जड़ा जाता है। वही संकेत है।
उत्कर्ष - उन्नति, बड़ाई
विभूति - धन, राख
दिन पूरे होना - आयु ख़तम होना
चिताना - सावधान करना
अनुज - छोटा भाई
अग्रज - बड़ा भाई
असीसना - आशीर्वाद देना

कौशल

श्री० प्रेमचन्द

[जन्म १८८० ई०—मृत्यु १९३६ ई०; स्थान बनारस। ग़रीब माँ-बाप के लड़के थे। अपने प्रयत्न से ही पढ़-लिखकर डिप्टी इन्सपेक्टर आफ़ स्कूलस हुए। १९०७ ई० से कहानियाँ लिखना शुरू कर दिया। उर्दू में पहले लिखते थे। फिर हिन्दी में भी लिखने लगे। हिन्दुस्तानी शैली के सफल लेखक थे। ग़रीब, दुखी किसान और मज़दूरों को लेकर ही आपने सारे उपन्यास और कहानियाँ लिखी हैं। आपने क़रीब तीन सौ कहानियाँ लिखी हैं। एक दर्जन उपन्यास भी आपके लिखे हैं। सेवासदन, रंगभूमि, कायाकल्प, गोदान वग़ैरह प्रसिद्ध उपन्यास हैं।

इस छोटी-सी कहानी "कौशल" में लेखक ने एक साधारण गृहस्थ के जीवन का स्वाभाविक चित्रण किया है।]

पंडित बालकराम शास्त्री की धर्मपत्नी माया को बहुत दिनों से एक हार की लालसा थी और वह सैकड़ों बार पंडितजी से उसके लिए आग्रह कर चुकी थी; किन्तु पण्डितजी हीला-हवाला करते रहते थे। यह तो साफ़-साफ़ न कहते थे कि मेरे पास रुपये नहीं हैं—इससे उनके पराक्रम में बट्टा लगता था। लेकिन और दलीलों की शरण लिया करते थे। "गहनों से कुछ लाभ नहीं, एक तो धातु अच्छी नहीं मिलती; उसपर सुनार रुपये के आठ आने कर देता है और सबसे बड़ी बात यह कि घर में गहने रखना चोरों को नेवता देना है। घड़ी भर के श्रृंगार के लिए इतनी

विपत्ति सिर पर लेना मूर्खों का काम है।" बेचारी माया तर्कशास्त्र तो पढ़ी नहीं थी, इन दलीलों के सामने निरुत्तर हो जाती। पड़ोसिनों को देख-देखकर उसका जी ललचा करता था; पर दुख किससे कहे? यदि पंडितजी ज़्यादा मेहनत करने के योग्य होते तो मुश्किल आसान हो जाती। पर वे आलसी जीव थे। पत्नीजी की कटूक्तियाँ सुननी मंजूर थीं, लेकिन निद्रा की मात्रा में कमी न कर सकते थे।

एक दिन पंडितजी पाठशाला से आये तो देखा कि माया के गले में सोने का हार विराज रहा है। हार की चमक से उसकी मुखज्योति चमक उठी थी। उन्होंने उसे कभी इतनी सुंदरी न समझा था। पूछा—यह हार किसका है?

माया—पड़ोस में जो बाबू साहब रहते हैं, उनकी स्त्री का है। आज उनसे मिलने गयी थी, यह हार देखा, बहुत पसंद आया। तुम्हें दिखाने के लिए पहनकर चली आयी। बस, ऐसा ही एक हार मुझे बनवा दो।

पंडित—दूसरे की चीज़ नाहक माँग लायी। कहीं चोरी हो जाय तो बनवाना ही पड़े, ऊपर से बदनामी भी हो।

माया—मैं तो ऐसा ही हार लूँगी। २० तोले का है।

पंडित—फिर वही ज़िद!

माया—जब सभी पहनती हैं तो मैं ही क्यों न पहनूँ?

पंडित—सब कुएँ में गिर पड़ें तो तुम भी कुएँ में गिर पड़ोगी? सोचो तो, इस वक़्त इस हार के बनाने में ६००) लगेंगे। अगर २) प्रति सैकड़ा भी ब्याज रख लिया जाय तो ५ वर्ष में ६००) के, लगभग २०००) हो जायेंगे। लेकिन ५ वर्ष में तुम्हारा हार मुश्किल से ३००) का रह जायगा। इतना बड़ा नुक़सान उठाकर हार पहनने में क्या सुख? यह हार वापस कर दो, भोजन करो और आराम से पड़ी रहो।

यह कहते हुए पंडितजी बाहर चले गये।

रात को एकाएक माया ने शोर मचाकर कहा—चोर! चोर! हाय, घर में चोर! मुझे घसीटे लिये जाते हैं।

पंडितजी हकबकाकर उठे और बोले—कहाँ, कहाँ? दौड़ो, दौड़ो!

माया—मेरी कोठरी में गया है। मैंने उसकी परछाईं देखी है।

पंडित—मुझसे तो मारे डर के उठा नहीं जाता।

कई आदमी बाहर से बोले—कहाँ है पंडितजी, कोई सेंद पड़ी है क्या?

माया—नहीं नहीं, खपरैल पर से उतरे हैं। मेरी नींद खुली तो कोई मेरे ऊपर झुका हुआ था। हाय राम! यह तो हार ही ले गया! पहने-पहने सो गयी थी! मुए ने गले से निकाल लिया! हाय भगवान्!

पंडित—तुमने हार उतार क्यों नहीं दिया था?

माया—मैं क्या जानती कि आज ही यह मुसीबत सिर पड़नेवाली है, हाय भगवान।

पंडित—अब हाय हाय करने से क्या होगा? अपने कर्मों को रोओ। इसीलिए कहा करता था कि सब घड़ी बराबर नहीं जाती, न जाने कब क्या हो जाय। अब आयी समझ में मेरी बात? देखो और कुछ तो नहीं ले गया?

पड़ोसी लालटेन लिये आ पहुँचे। घर में कोना-कोना देखा। छत पर चढ़कर देखा, अगवाड़े-पिछवाड़े देखा, शौचगृह में झाँका, कहीं चोर का पता न था।

एक पड़ोसी—किसी जानकार आदमी का काम है।

दूसरा पड़ोसी—बिना घर के भेदिये के कभी चोरी होती ही नहीं। और कुछ तो नहीं ले गया?

माया—और तो कुछ नहीं गया। बरतन सब पड़े हुए हैं। संदूक भी बंद पड़े हुए हैं। निगोड़े को ले ही जाना था तो मेरी चीज़ें ले जाता; परायी चीज़ ले गया। भगवान्! उन्हें कैसे मुँह दिखाऊँगी।

पंडित—अब गहने का मज़ा मिल गया न?

माया—हाय भगवान्, यह अपजस बदा था।

पंडित—कितना समझाकर हार गया, तुम न मानीं न मानीं! बात की बात में ६००) निकल गये! अब देखूँ भगवान् कैसे लाज रखते हैं।

माया—अभागे मेरे घर का एक-एक तिनका चुन ले जाते तो मुझे इतना दुख न होता। अभी बेचारी ने नया ही बनवाया था।

पंडित—खूब मालूम है, २० तोले का था?

माया—२० ही तोले का तो कहती थीं।

पंडित—बधिया बैठ गयी और क्या?

माया—कह दूँगी, घर में चोरी हो गयी। क्या जान लेंगी? अब उनके लिए कोई चोरी थोड़े ही करने जायगा?

पंडित—तुम्हारे घर से चीज़ गयी, तुम्हें देनी पड़ेगी। उन्हें इससे क्या प्रयोजन कि चोर ले गया या तुमने उठाकर रख लिया।

माया—तो इतने रुपये कहाँ से आयेंगे?

पंडित—कहीं न कहीं से तो आयेंगे ही, नहीं तो लाज कैसे रहेगी? मगर, की तुमने बड़ी भूल!

माया—भगवान् से मँगनी की चीज़ भी न देखी गयी। मुझे काल ने घेरा था, नहीं तो घड़ी भर गले में डाल लेने से ऐसा कौन-सा बड़ा सुख मिल गया? मैं हूँ ही अभागिनी।

पंडित—अब पछताने और अपने को कोसने से क्या फ़ायदा ? चुप होके बैठो। पड़ोसिन से कह देना, घबराओ नहीं। तुम्हारी चीज़ जब तक लौटा न देंगे, तब तक हमें चैन न आयेगा।

पंडित बालकराम को अब नित्य यही चिंता रहने लगी कि किसी तरह हार बने। यों अगर टाट उलट देते तो कोई बात न थी, पड़ोसिन को संतोष ही करना पड़ता, ब्राह्मण से डाँड़ कौन लेता; किंतु पण्डित जी ब्राह्मणत्त्व के गौरव को इतने सस्ते दामों न बेचना चाहते थे। आलस्य छोड़कर धनोपार्जन में दत्तचित्त हो गये।

६ महीने तक उन्होंने दिन को दिन और रात को रात नहीं जाना। दोपहर को सोना छोड़ दिया। रात को भी बहुत देर तक जागते। पहले केवल एक पाठशाला में पढ़ाया करते थे। इसके सिवा वह ब्राह्मण के लिए खुले हुए एक सौ एक व्यवसायों में से सभी को निंदनीय समझते थे; पर अब पाठशाला से आकर संध्या समय एक जगह 'भागवत की कथा' कहने जाते, वहाँ से लौटकर ११—१२ बजे रात तक जन्म-कुण्डलियाँ, वर्ष-फल आदि बनाया करते। माया पण्डितजी का अध्यवसाय देख-देखकर कभी-कभी पछताती कि कहाँ से कहाँ मैंने यह विपत्ति सिर पर ली। कहीं बीमार पड़ गये तो लेने के देने पड़ेंगे। उनका शरीर क्षीण होते देखकर उसे अब यह चिन्ता व्यथित करने लगी। यहाँ तक कि पाँच महीने गुज़र गये।

एक दिन संध्या समय वह दिया-बत्ती करने जा रही थी कि पंडितजी आये, जेब से एक पुड़िया निकालकर उसके सामने फेंक दी और बोले—लो, आज तुम्हारे ऋण से मुक्त हो गया।

माया ने पुड़िया खोली तो उसमें सोने का हार था, उसकी चमक-दमक, उसकी सुंदर बनावट देखकर उसके अंतस्थल में गुदगुदी-सी होने लगी। मुख पर आनंद की आभा दौड़ गयी। उसने कातर नेत्रों से देखकर पूछा—खुश होकर दे रहे या नाराज़ होकर?

पंडित—इससे क्या मतलब? ऋण तो चुकाना ही पड़ेगा, चाहे खुशी से हो या नाखुशी से!

माया—यह ऋण नहीं है।

पंडित—और क्या है? बदला सही।

माया—बदला भी नहीं है।

पंडित—फिर क्या है?

माया—तुम्हारी निशानी!

पंडित—तो क्या ऋण के लिए दूसरा हार बनवाना पड़ेगा?

माया—नहीं नहीं, वह हार चोरी नहीं गया था। मैंने झूठ-मूठ शोर मचाया था।

पंडित—सच?

माया—हाँ, सच कहती हूँ।

पंडित—मेरी क़सम ?

माया—तुम्हारे चरण छूकर कहती हूँ ।

पंडित—तो तुमने मुझसे कौशल किया था ?

माया—हाँ !

पंडित—तुम्हें मालूम है, तुम्हारे कौशल का मुझे क्या मूल्य देना पड़ा ?

माया—क्या ६००) से ऊपर ?

पंडित—बहुत ऊपर ! इसके लिए मुझे अपने आत्मस्वातंत्र्य का भी बलिदान करना पड़ा है ।

बट्टा लगना - कमी होना, कलंक लगना
कटूक्तियाँ - कड़ी बातें
नाहक - व्यर्थ, फ़िज़ूल
सेंद - घर में घुसने के लिये चोर दीवार काटकर जो रास्ता बनाते हैं
मुए - मरा (गाली)
अगवाड़े-पिछवाड़े - घर के आगे पीछे
शौचगृह - पाखाना, टट्टी
भेदिया - जासूस, भेद जाननेवाला
निगोड़ा - एक गाली, जिसके आगे पीछे कोई न हो (न पूर्वज और न सन्तान)
उपहास - निन्दा, कलंक
बदा होना - भाग्य में लिखा होना
बधिया बठना - नष्ट होना, चौपट होना
टाट उलटना - दिवाला निकलना, कर्ज वापस देने में असमर्थता प्रकट करना
डाण्ड - दंड, सज़ा
दामों - क़ीमत पर
दत्तचित्त - ध्यान देकर
अध्यवसाय - परिश्रम

अकबर का सुशासन

प्रो० राधाकृष्ण झा, एम. ए.

[जन्म १८८८ ई०. मृत्यु १९२६ ई० ; स्थान—भागलपुर (बिहार)।
प्रोफेसर साहब इतिहास और अर्थ शास्त्र के गहरे विद्वान् और लेखक थे। आप पटना कालेज के प्रिन्सिपाल भी रहे थे। अफ़सोस कि बहुत कम उम्र में आपकी मौत हो गयी। "भारत की सांपत्तिक अवस्था" और "भारतीय शासन" आपके बहुमूल्य ग्रंथ हैं।

इस लेख में आपने विद्वत्तापूर्वक संक्षेप में यह बतलाया है कि अकबर भारत के शासन में धार्मिक भेद-भाव को मिटाकर ही सफल हो सका। दरअसल, हिन्दुस्तान में या कहीं भी धर्म की बुनियाद पर राज नहीं चल सकता, इस बात को अकबर ने उस वक़्त भी समझा था।]

मुसलमान बादशाहों में अकबर ही सबसे पहला बादशाह हुआ जिसने राजनीतिक तत्व को समझा। वास्तव में मुग़ल-वंश का संस्थापक वही था, और उसे ही भारत वर्ष का—हिन्दू, मुसलमानों का—सच्चा राजा बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उसका जीवन-चरित्र पढ़ने से आरम्भ में ही विचित्रता झलकने लगती है। पराजित शत्रु के प्रति दया दिखाना, नव-स्थापित राज्य में कितना काम करता है यह अकबर खूब समझता था। उसकी राजनीति सबसे निराली थी। उससे पहले के मुसलमान बादशाहों ने न वैसा किया था न उनसे वैसा होना ही सम्भव था। पानीपत की 'दूसरी' लड़ाई के बाद जब प्रभु-भक्त हेमू घायल

होकर पकड़ा गया तब उसी अवस्था में वह अकबर के सामने लाया गया। यह योद्धा जो कुछ ही समय पहले एक बड़ी सेना इकट्ठी कर भारत वर्ष की ओर से मुग़लों का सामना करने गया था, घायल और बँदी होकर अपने शत्रु के सामने हाज़िर किया जाता है। ऐसे समय में पठान बादशाह क्या करते यह कहने की आवश्यकता नहीं। खानखाना बैरमख़ाँ ने प्रचलित नियमों के अनुसार ही युवक बादशाह अकबर से कहा कि आप इस पराजित काफ़िर का सिर काटकर अपनी तलवार की प्यास बुझावें। अकबर लड़का था, परन्तु भावी महत्व का चिन्ह उसके रोम रोम से झलकता था। सच्चे वीर को जैसा चाहिए उसी प्रकार अकबर ने भी पराजित, बँदी तथा काफ़िर शत्रु को निर्दयता से मारने से साफ़ इन्कार किया। परन्तु बैरम कब माननेवाला था, वह जिस रंग में रंग चुका था, उसने जिस पाठशाला में शिक्षा पायी थी उसके विरुद्ध जाना उसके लिए कठिन था। बैरम ने झट मरते हुए हेमू का सिर धड से अलग कर अपनी शत्रुता की आग बुझायी। पर इस एक घटना ने ही स्पष्ट कर दिखाया कि भारत का भावी सम्राट किस प्रकार का मनुष्य था।

ज्यों ज्यों अकबर की उम्र बढ़ती गयी, उसके विचार भी प्रौढ़ होते गये और साथ ही भारत की शासन-पद्धति भी बदलती गयी। अकबर ने मनु संहिता में कही गयी ऋषियों की बातों का ही प्रयोग करना उचित समझा। सम्भव है कि अबुलफ़ज़ल

और फैज़ी जैसे संस्कृत विद्वानों ने वे बातें अकबर को सुझायी हों। जो हो, इतना सत्य है कि अकबर ने निश्चय कर लिया था कि भारत वर्ष का राज्य केवल बाहुबल पर ही स्थिर नहीं रह सकेगा। जब तक इस राज्य की नींव प्रजा के प्रेम तथा सहानुभूति पर न पड़ेगी तब तक इसका चिरस्थायी होना कठिन है। जब तक हिन्दू-मुसलमान का मेल न बढ़ेगा, आपस की फूट न मिटेगी, विजेता और विजित का भेद-भाव न घटेगा तब तक वह निश्चिंत न रह सकेगा। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अकबर ने कई उपाय किये। मुग़लों ने यद्यपि पानीपत की लड़ाई में अफ़गानों को सर करना, मुग़लों के राज्य का विस्तार करना तथा हिन्दू प्रजा को भी मिलाये रहना सोच रक्खा था, तो भी एक साथ ये तीनों काम संकीर्ण नीति के अवलम्बन से नहीं हो सकते थे। अकबर दूरन्देश था, उसने पहले हिन्दुओं को विशेष कर राजपूत वीरों को वश में करने की ठानी। लड़ाई से वा प्रलोभन से वा मनु के बताये उपायों से किसी न किसी प्रकार उसने राजपूत नरेशों को अपनी मुट्ठी में कर लिया। क्रमशः सब के सब, केवल महाराणा उदयसिंह और अद्वितीय वीर प्रतापसिंह को छोड़ अकबर के मित्र व संबंधी बन गये। वे बड़े बड़े पदों पर बिठाये गये, राजपूतों की सेना बनी और उसके अधिनायक तथा राजपूत राजा ही होने लगे। अब क्या था, राजा के प्रेम और विश्वास पर मुग्ध होकर, हिन्दुओं ने प्राण तक अर्पण करना तुच्छ ही समझा।

उन्हें अपनी योग्यता दिखाने तथा अकबर को अपना पक्ष पुष्ट करने का इससे बढ़कर और कौन अवसर मिल सकता था। हिन्दू मनसबदार काबुल या बङ्गाल के अफ़गानों को सर करने के लिए नियुक्त किये जाने लगे। जो बातें यहाँ मुसलमानों के इतिहास में कभी नहीं हुई थीं वह अकबर ने कर दिखायीं।

धर्म के नाम पर, ईश्वर-भक्ति के बहाने, इतनी खून-ख़राबी हुई, इसकी गवाही इतिहास पुकार पुकार कर दे रहा है। हमारा ही धर्म सच्चा है। हम ईश्वर को जो आकार, जो गुण देते हैं वही ठीक है। हम जिस प्रकार उसकी पूजा करते हैं, हमने उसकी उपासना के लिए जो पद्धति बनायी है और जो मंदिर उठाया है वही ठीक है। दूसरों की सब बातें बिलकुल झूठी व निस्सार हैं। इतना ही नहीं, हम जो कहते हैं या जो करने की सलाह देते हैं दूसरों को भी वही मानना और करना पड़ेगा। यदि न करेंगे तो उन्हें तलवार के ज़ोर से सच्चे रास्ते पर खींच लाना हमारा धर्म है। यही तो आज तक के धर्म-युद्धों की नीति रही है। इन्हीं विचारों से परिचालित होकर ईश्वर के भक्तों ने रक्त की कितनी नदियाँ बहायीं और निरपराधियों के रुण्ड-मुण्ड के कैसे कैसे पहाड़ खड़े किये उनका अब कौन हिसाब लगा सकता है? कैथलिक और प्रोटेस्टन्टों के युद्ध, मुसलमानों और ख्रिस्तानों की धार्मिक लड़ाइयाँ, हिन्दुओं और बौद्धों के समर और हिन्दू-मुसलमानों के युद्ध ही उनके प्रमाण हैं। पर इन सब लड़ाई-झगड़ों का क्या फल

हुआ? कोई किसी दूसरे धर्म का समूल नाश न कर सका। ईश्वर जो था वही रहा। वह न पराजितों ही के पास आया, न उसने विजेताओं ही को अपनाया। उसके लिए सब बराबर हैं, सब उसी के जीव हैं। अपनी अपनी रुचि और बुद्धि के अनुसार लोग उसके रूप की कल्पना कर और उपासना की पद्धति बना लेते हैं। इन विचारों पर चलने के लिए असंकुचित बुद्धि चाहिए, उदार हृदय चाहिए। पर मत-मतान्तर का जोश लोगों को अनुदार और कादर बना देता है। मुसलमानों के समय में भी भारत की ऐसी अवस्था थी। अकबर ने देखा कि धार्मिक प्रभेद के कारण हिन्दू मुसलमानों में बहुत बड़ा वैमनस्य फैला हुआ है और यह कभी सम्भव ही नहीं है कि सबके सब हिन्दू मुसलमान हो जाँय जिससे दोनों का झगड़ा मिटे और बादशाह सुख की नींद सोवें।

इस कारण उसने सोचा कि मित्र भाव तथा धार्मिक प्रश्नों में उदार नीति के प्रयोग ही राजनीतिज्ञता का काम होगा। अतएव उसने ऐसा ही किया और फल भी आशातीत हुआ। हिन्दुओं को अपने धर्म के कारण जो जज़िया नामक कर देना पड़ता था वह उठा दिया गया। हिन्दू तीर्थयात्रियों से जो कर लिया जाता था वह भी माफ़ कर दिया गया था। अब तक हिन्दू कर्मचारी उच्च पद पर नियुक्त नहीं होते थे, जोखिम का काम उनके हाथ नहीं सौंपा जाता था। अकबर ने इस रुकावट को भी हटा दिया। हिन्दू-

मुसलमान दोनों के अधिकार प्रायः बराबर हो गये। दोनों अपनी अपनी योग्यता और कार्य-कुशलता से उच्च पदों पर पहुँचने लगे। अकबर बादशाह इस उदार नीति से हिन्दुओं के प्यारे हो गये। हिन्दुओं के बराबर कृतज्ञ जाति पृथ्वी पर खोजे-ढूँढ़े ही मिलेगी। प्रेम और राजभक्ति से गद्-गद हो हिन्दुओं ने कहना शुरू किया— "दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा"।

चिरस्थायी - बहुत दिनों तक रहनेवाला

विजित - पराजित, हारा हुआ

सर करना - जीतना

दूरन्देश - दूरदर्शी, बहुत दूर तक सोचनेवाला

मनसबदार - मुग़लों के समय का सरकारी पद

निस्सार - तत्वहीन

परिचालित होना - चलाया जाना

कादर - डरपोक, कायर

वैमनस्य - मन-मुटाव, झगड़ा

दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा - यह दिल्लीश्वर है या जगदीश्वर? अर्थात् दिल्ली के सम्राट ही भगवान हैं।

बेला का ब्याह

आचार्य चतुरसेन शास्त्री

[जन्म १८८८ ई०। स्थान—दिल्ली। शास्त्रीजी आयुर्वेद शास्त्र के उद्भट विद्वान और वैद्य हैं। उसी तरह आप साहित्य-क्षेत्र के भी उद्भट लेखक हैं। कई उपन्यास, कहानियाँ, नाटक तथा वैद्यक ग्रंथ आपने लिखे हैं। भाषा चलती हुई मुहावरेदार होती है। भाव-प्रधान शैली के ज़ोरदार लेखक हैं।

यह कहानी हिन्दुओं के बुझते हुए प्रताप के वक़्त की है। 'आल्हा' काव्य हिन्दी का प्रसिद्ध वीर-रसपूर्ण काव्य है। उसी में बेला का ब्याह एक ज़बरदस्त घटना है। लेखक ने उस ज़माने के राजपूतों की मनोवृत्ति का बहुत सुदर चित्रण किया है जब व्यक्तिगत बहादुरी चोटी पर पहुँची थी और राष्ट्र की पूरी उपेक्षा हुई थी।]

भारतवर्ष में स्त्रियों का 'अबला' नाम प्रख्यात है। यह पता लगाने का कोई उपाय नहीं है कि कब से यह नीच उपाधि स्त्री-रत्नों को आर्यों के वंशधरों ने प्रदान की है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि जब से ऐसा हुआ है तब से भारत वर्ष नाश की ओर जा रहा है। बीसवीं शताब्दि के वातावरण में ऐसा मालूम हो रहा है कि शायद जगत् के साथ साथ देश से भी यह अपवाद दूर हो जायगा। परंतु यदि वस्तु स्थिति का गहराई से अध्ययन किया जाय तो मालूम होता है कि वास्तव में अभी तक वैसी कोई बात नहीं है। स्वाधीनता या उन्नति के नाम पर जो कुछ हो रहा है—वह वास्तव में आत्म-छल या आत्म-प्रतारणा मात्र है। हमने स्त्रियों की वेश-भूषा ऐसी बना रखी है कि यदि विपत्ति के समय उन्हें भागना पड़ जाय तो वे

अपने गहने-वस्त्रों में ही उलझकर गिर पड़ें। उनका रहन-सहन और जीवन इतना निकृष्ट है कि देखकर दुख होता है।

स्वभावतः यह देखा जाता है कि स्त्रियाँ योद्धा स्वभाव की होती हैं। उनके मस्तिष्क में प्रतीकार के या उत्तेजित हो जाने के तत्व बहुत अधिक हैं। जिन्हें अपढ़ स्त्रियों के वाग्युद्ध देखने या उसमें घायल होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है—वे यह कह सकते हैं कि यदि इन सूरमाओं के भुजदंड हज़ारों वर्ष तक चूड़ियाँ और भारी गहने पहनाकर दुर्बल न कर दिये जाते और उन कलाइयों में ढाई पाव लोहे की "कराली" पकड़ने का उनका प्राचीन अभ्यास जारी रहता तो आज मर्दों को ज़बान की तेज़ धार की अपेक्षा उसी लोहे की धार का शिकार बनना पड़ता।

पिछले ज़माने में भारत में रानी दुर्गावती, लक्ष्मीबाई जैसी अनेक वीरांगनाएँ हो गयी हैं, जिन्होंने अपने सम्माननीय लोहू से रण-क्षेत्र को सौभाग्य-तिलक प्रदान किया है।

परन्तु आज,—जहाँ के करोड़ों मर्द चुनी धोती पहने बालों की माँग काढ़े, बारीक तंजेब का कुर्त्ता पहने, चर्र-मर्र बूट चटकाते गुलामी की कुर्सी की ओर दिन निकलते ही लपकते जाते हों, दिन भर गाली और फटकार खाकर शाम को निर्लज्ज बनकर अपनी पत्नियों के सामने मर्द बनने की डींग हाँककर उनसे अपनी चरण-सेवा कराते हों—वहाँ की स्त्रियाँ क्या हो सकती हैं? और उन भाग्य-हीन सजीव मर्दों से क्या आशा की जा सकती है?

दिल्ली-पति पृथ्वीराज की कन्या बेला को महोबे के सामन्त आल्हा ने अपने भतीजे के लिए माँगने का साहस किया। सम्राट की कन्या और तुच्छ शत्रु-सामन्त! प्रस्ताव तिरस्कृत कर दिया गया। आल्हा नियत काल में बरात लेकर आ धमका। वह आजकल के निठल्ले चिकनियों की, लड्डू खानेवाली बरात न थी। प्रत्येक बराती लोहे के बख़्तर से सजा था। प्रत्येक की रान के नीचे बिजली की तरह तड़पता हुआ घोड़ा था। प्रत्येक की दृष्टि में प्रलय की आग थी। १८ वर्ष का दूल्हा ब्रह्मानन्द स्त्रियों के सजने योग्य चमकीले वस्त्रों के स्थान पर सिर से पैर तक शस्त्रों से सज्जित था। उसके दाहिनी ओर अखण्ड योद्धा आल्हा, बाईं ओर प्रचण्ड अजेय शक्ति-पुंज ऊदल और आगे मृत्युंजय मलखान थे। दिल्ली के फाटक पर छावनी पड़ गयी। रूपा नाई को बुलाकर कहा गया—जाओ समधी से बरात की अगवानी करने को कह आओ। रूपा नाई उस बरात के उपयुक्त नाई था, बरात के सामन्तों में शायद ही कोई योद्धा उसकी बराबरी का होगा। रूपा उड़ा, मय घोड़े के दरबार में घुस गया। पृथ्वीराज को यह धृष्टता सहन नहीं हुई। सन्देश सुनकर तो वह जल उठे; संकेत के साथ योद्धा टूटे, दोनों हाथों से तलवार लेकर नेग भुगताने लगे। चारों ओर मुण्ड ही मुण्ड थे। एक महा सामन्त का सिर काटकर रूपा लौटा और यह कहकर तीर की तरह लौटा कि नेग चुका और दक्षिणा में यह ले चला, अब फेरों के लिए तैयार रहना।

बरात बल-पूर्वक नगर में घुसी। पद-पद पर लोहा था—मगर लोहे से लोहा भिड़ा था। वीरों की अजेय बरात काई की तरह योद्धाओं को चीरती हुई महलों में जा घुसी। ५२ महा-सामन्त नंगी तलवारें ऊँची करके मण्डप बनाकर खड़े हो गये। कन्या हर ली गयी! पुरोहित मंत्र पढ़ने लगे। विवाह हो गया। रक्त-फाग तो चारों तरफ़ चल ही रहा था; बहू का डोला लेकर बरात चल खड़ी हुई। नगर के फाटक पर ब्रह्मानंद की छाती में तीर लगा और वह मर गया। बरात स्तब्ध थी। बेला ने सुना। वह डोली के बहुमूल्य सुनहले पर्दे को चीरकर बाहर आयी। उसने ललकारकर कहा—"इस बरात में कोई वीर है?" अनोखी ललकार थी। ऊदल आगे बढ़े; शोक से उनकी छाती भर रही थी। उन्होंने तलवार की नोक धरती पर गाड़कर कहा—"बेटी! क्या आज्ञा?"

"सती होना चाहती हूँ। क्या उसका प्रबंध कर सकते हो?"

"क्या प्रबंध करना होगा?"

"सौ मन चन्दन, सूखा चाहिए।"

"कहाँ मिलेगा?"

"मेरे पिता की बारहदरी में चन्दन के खंभे हैं—वह उखाड़ लाने होंगे।"

"सती की जय"—ऊदल ने तलवार आकाश में घुमायी।

बरात अंतिम नेग लेने नगर में घुसी। भयानक, घमासान और लोहू की नदी के बीच में से खंभे उखाड़े गये। बेला सती हुई।

प्रख्यात - प्रसिद्ध, मशहूर
वंशधर - वंशवाले, संतान
वातावरण - आब-हवा
अपवाद - कलंक
वस्तुस्थिति - सचाई
आत्म-छल, आत्म-प्रतारण - Self-deception
निकृष्ट - तुच्छ, नीच
योद्धा - वीर
प्रतीकार - बदला
वाग्युद्ध - बातों का झगड़ा
सूरमा - वीर
कराली - तलवार
सम्माननीय - प्रतिष्ठा के योग्य
चुनी-धोती - सजकर पहनी हुई बंगाली-नुमा धोती, साड़ी-नुमा धोती
तंजेब - एक पतला कपड़ा
गुलामी की कुर्सी - नौकरी
डींग हाँकना - अपनी बड़ाई करना
महोबा - जगह का नाम
सामन्त - सरदार
तिरस्कृत - अपमानित
चिकनियाँ - फैशनवाले
बख़्तर - कवच
रान - जांघ
मृत्युंजय - मृत्यु को जीतनेवाला
अगवानी - स्वागत
उपयुक्त - योग्य
धृष्टता - ढिठाई
नेग - विवाह आदि शुभ अवसरों पर नाई आदि को खुशी से पैसा कपड़ा वग़ैरह दिये जाने का नियम
भुगताना - पूरा करना, देना
मुण्ड - सिर
फेरा - सप्तपदी, विवाह के अवसर पर वर-वधू का अग्नि के चारों ओर परिक्रमा करना।
बल-पूर्वक - ज़बरदस्ती
लोहा - लड़नेवाले सैनिक
काई - पानी पर जमी एक तरह की घास
रक्त-फाग - ख़ून की होली, युद्ध
डोला - पालकी
स्तब्ध - चुप, शांत
बारहदरी - बरामदा

विश्वविजयी गामा

पण्डित मोहनलाल महतो "वियोगी"

[जन्म १९०२ ई० ; स्थान गया। आप प्रतिभाशाली कवि, लेखक व चित्रकार हैं। कहानियाँ भी आपकी अच्छी उतरी हैं। आपकी प्रतिभा बहुमुखी है। शुरू में पहलवानी का शौक भी था। निर्माल्य, एकतारा, आर्यावर्त वग़ैरह आपके काव्य हिन्दी में बहुत प्रसिद्ध हो चुके हैं।

"गामा" पहलवान का नाम हिन्दुस्तान में कौन नहीं जानता होगा ? लेखक ने संसार-विजयी गामा की जीवनी में इस देश के सपूत की मानवता का भी उज्ज्वल चित्र दिया है। पाठक "गामा" की जीवनी में वही भाग ज़्यादा पसंद करेंगे।]

(१)

इधर मैं पटियाला में था। वहाँ से एक दिन के लिए 'सनाम' गया। यह पटियाला स्टेट का एक देहाती शहर है। जब मैं सुन्दर मैदानों के बीच से जानेवाली काली पक्की और सीधी सड़क से लौट रहा था तब लारी पर बैठे हुए यात्रियों में से एक ने गाना आरम्भ किया। वह गाने लगा :—

खुदा ने यहाँ मक्खियाँ मारने को,
बनाये हैं खुशरू जवाँ कैसे कैसे।

उसके सामने एक नवयुवक बैठा ऊँघ रहा था। मोर की तरह पतली गर्दन, सारस-सी शानदार टाँगें और मुट्ठी भर छाती, पर—आँखो में सुर्मा, हाथों में मेहँदी ; पूरे छैले बने हुए। गवैया

BVBSSMV

इन्हीं 'खुशरू जवाँ' को देखकर फड़क उठा था। हमारे नवयुवक जो भावी भारत के द्वार-रक्षक बनेंगे, आज मक्खियाँ मारने और जीवन के दिन गिनने के लिए सिनेमा-घरों में 'हाय हाय' करते सर्वत्र दिखलाई पड़ते हैं। मैं ऐसे नवयुवकों को देखता हूँ तब मन घृणा से भर जाता है। मैं भारत के सभी बड़े नगरों की ख़ाक छान चुका हूँ और अपने इसी अनुभव के बल पर कह सकता हूँ कि वर्तमान से भी हमारा भविष्य अधिक अन्धकार-पूर्ण होगा। हमारा स्वास्थ्य-धन मिट्टी के मोल बिक चुका है।

१९१५ के लगभग विश्वविजयी गामा गया में थे। मेरे ही समाज के एक पण्डा ने उन्हें अपने यहाँ वर्षों रक्खा था। मैं गामा को नित्य देखता था, मैं नित्य उन्हें व्यायाम करते और 'ज़ोर' करते देखता था। गया के पण्डों में व्यायाम का अच्छा प्रचार है। आज भी वहाँ पुष्ट, प्रसन्न, नीरोग नवयुवकों की कमी नहीं, पर जिन सज्जन के यहाँ गामा थे वे यदि पहलवानी को अपना पेशा बना लेते तो विश्वविजयी तो नहीं, पर 'भारतविजयी' अवश्य होते—ऐसे सबल पहलवान थे वे! गामा उनके यहाँ वर्षों रहे और उनके व्यक्तित्व के प्रभाव से गया में व्यायाम का अन्धाधुन्ध प्रचार हुआ, जो आज तक है। गया का पण्डा-समाज गामा का कृतज्ञ है। गामा के प्रभाव से पण्डा-समाज दोष-रहित होकर व्यायाम-शील बन गया। पण्डों का धन तो चला गया, पर ललचानेवाला स्वास्थ्य उन्हें मिला। वर्षों बीत गये; गया छोड़कर गामा

282

पटियाला के महाराज के आश्रित हो गये—महानद समुद्र में पहुँच-कर ही शान्ति पाता है। उसकी प्रखर धारा, विपुल जल और विस्तार को छोटी नदियाँ अपने भीतर आश्रय कैसे दे सकती हैं? अनन्त सागर ही उसके लिए उपयुक्त आश्रय-स्थल है।

(२)

विश्वविजयी "गुलाम" के अस्त होते ही गामा का उदय हुआ। गामा ने संसार का भ्रमण किया और जहाँ भी गये, उन्होंने भारत का झण्डा ऊँचा रक्खा। भारत को महात्मा गान्धी जैसा विश्वविजयी मस्तिष्क प्राप्त हुआ, कवीन्द्र रवींद्रनाथ जैसा विश्वविजयी हृदय प्राप्त हुआ और गामा जैसे विश्वविजयी भुजदंड। ये तीनों विभूतियाँ भारत के ऐसे रत्न हैं, जिनके सामने हीरों का बना हुआ यदि हिमालय जैसा पहाड़ भी हो तो उसका कोई मूल्य नहीं होगा। ये तीनों अमर हैं, काल का प्रभाव इनपर नहीं है, ये देश और काल के परे हैं। इन प्रातःस्मरणीय विश्ववन्द्य पुरुषोत्तमों की पवित्र जन्मभूमि है हमारा भारत। भारत धन्य है, हम धन्य हैं।

२४ जुलाई को मैंने पटियाला में गामा के दर्शन किये।

(३)

मैंने महात्माजी को ख़ूब निकट से देखा है, उनकी बातें सुनी हैं, उनसे बातें भी की हैं। कवीन्द्र के चरणों के आश्रय में रहकर कुछ सीखने का अवसर भी मिला है, उनके चरण पखारे हैं, साथ

साथ घूमा-टहला हूँ और उनके आशीर्वाद प्राप्त करने का गौरव भी मिल चुका है। एक अभाव मन में यही खटकता था कि गामा को खूब अच्छी तरह नहीं देखा, उनके विचार नहीं सुने; उस दिन की प्रतिक्षा में था जिस दिन मैं गामा के सम्पर्क में आता। इधर कई बार गामा गया आये, पर ठलुआ दर्शकों की भीड़ सदा उन्हें घेरे रहती, वे भी व्यस्त ही रहते। जान-बूझकर मैं उनसे नहीं मिला। सोचता था कभी पटियाला जाकर ही मुलाक़ात करूँगा। इस बार मेरी वह कामना पल्लवित-पुष्पित हुई। मैं किसी काम से पटियाला आया और एक दिन गामा से मिला। मेरी यह यात्रा अब सफल हो गयी।

गामा के वज्र जैसे शरीर को बुढ़ापे ने ढीला कर दिया है। उनका वह गठीला बदन, जिसे देखकर सारा संसार दाँतों उँगली काटता था, अब ढीला पड़ गया है, पर नख-दन्त विहीन होकर भी सिंह सिंह ही रहता है।

२३ जुलाई को मैं अपने उस्ताद श्यामजीदास पहलवान के साथ गामा के निवासस्थान की ओर चला। मेरे उस्ताद भी पटियाला के ही हैं और अपनी जवानी गँवाकर अब झख मारा करते हैं। शरीर सूख गया है, पर नाज़ वही है। रस्सी की तरह ऐंठ गये हैं, पर ताव में फ़र्क नहीं पड़ा। उगते हुए दिनमणि की सुनहली किरणों से पटियाला की साफ़-सुन्दर सड़कें जगमगा उठी थीं और दोनों ओर के घने वृक्षों पर मानो सोना बरस रहा था। हम गामा

के निवासस्थान की ओर चले। शहर के बाहर पटियाला के महाराज का विख्यात 'मोती-बाग़' है। मीलों तक फैला हुआ पार्क फूलों से भरा हुआ था, रङ्ग-विरङ्गी तितलियाँ उड़ रही थीं और हम दोनों सुगन्ध से भरी हुई हवा से मानों खेलते हुए चले जा रहे थे। पहले हम गामा के भाई इमामबख़्श के अखाड़े पर गये। देखा, बड़े बड़े पहलवान अखाड़े में क्रुद्ध भैंसों की तरह जूझ रहे हैं। विख्यात "हमीदा" पहलवान अखाड़े का उस्ताद है—हमीदा एक विशाल सांड है, कम से कम ५ मन तो ज़रूर भारी होगा। ऐसी विशाल काया मैंने बहुत दिनों से नहीं देखी थी—सिर से पैर तक लदी हुई, पीपे की तरह! इमामबख़्श के सात लड़के हैं, दूसरा 'गामा' है। अभी कच्ची उम्र है, मगर देखने में हाथी के बच्चे जैसा है, बड़ा बलवान् है और एक हज़ार रुपये की जोड़ में कुश्ती लड़ता है। इसके दूसरे छोटे भाई भी बड़े ही होनहार हैं। हमीदा पहलवान इन भाइयों का मामा है जो भारत के नामी पहलवानों में गिना जाता है। इसी हमीदा की देख-रेख में इमामबख़्श के लड़कों का शारीरिक विकास हो रहा है। कुछ दिन हुए इमामबख़्श गामा से अलग हो गया है, पर दोनों भाइयों का स्नेह-बन्धन अब तक दृढ़ है।

(४)

गामा और इमामबख़्श सगे भाई हैं, पर अब अलग अलग रहते हैं। राज्य की ओर से इन्हें ज़मीन मिली है और दोनों

को १½-२½ सौ महीना पेंशन भी मिलती है। गामा लखपति पहलवान है। स्वास्थ्य, यश, सम्मान, धन, परमात्मा ने सभी कुछ दे रक्खा है।

जिस समय गामा के डेरे पर पहुँचा वे अपने कमरे में पड़े थे। मेरे उस्ताद ने आवाज़ लगायी तब बाहर निकले—केवल कछनी लगाये। मैंने देखा, अचानक मेरे सामने मूर्तिमान पौरुष खड़ा है। मैं अकचका गया, क्या यही विश्वविजयी गामा पहलवान है? क़द साधारण है, यही ५ फुट ६ या ७ इञ्च। बड़ी बड़ी मूछें, ख़ूब घनी-चौड़ी भ्रू-रेखायें और लम्बी-लम्बी चमकदार आँखें। साँड़ जैसे कन्धे और चट्टान जैसा सीना! शालवृक्ष-सी जंघायें हैं। मैंने नज़र भर कर गामा को देखा—नमस्कार-सलाम भूल गया। गामा कमरे के भीतर से एक कुर्सी लिये निकले थे। वे मेरे आगे विनम्रतापूर्वक कुर्सी खिसकाते हुए बोले—"बैठिये! कहाँ से पधार रहे हैं?" वे बीच बीच में शुद्ध संस्कृत के शब्द भी बोलते हैं। सामने एक खाट पड़ी थी। उस खाट पर स्वयं बैठते हुए उन्होंने मेरे उस्ताद को बैठाया। मेरे उस्ताद ने जब परिचय दिया तब गामा हाथ जोड़कर बोले—"मैं तो आपका सेवक हूँ। आप मेरे अन्नदाता महाराजा साहब के तीर्थ-पुरोहित हैं, तब मेरे भी पूज्य हैं। कहिये, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?"

गामा—विश्वविजयी महान् गामा—की ऐसी विनम्रता किसके हृदय को मुग्ध नहीं कर लेगी! मेरी यह धारणा थी कि पहलवान

प्रायः अशिक्षित होते हैं, अतएव उनके लिए उजड्ड होना भी स्वाभाविक है। गामा की सरलता उनकी महत्ता के योग्य है। मैं बोला—"मैं तो आपके दर्शन करके ही कृतार्थ हो गया। आप तो हमारे मूर्तिमान गौरव हैं, विदेशों में हम आपके ही भरोसे सीना तानकर चलते हैं।" मैंने देखा, वह वृद्ध सिंह अचानक तनकर बैठ गया। उसकी बाहें फैल गयीं और चेहरे पर ललाई-सी दौड़ आयी। मुस्काता हुआ वह बोला—"आज भी किसका साहस है जो आपके सामने खड़ा हो? जब तक मेरे दम में दम है, आपकी विजय-पताका इसी शान से फहराती रहेगी।"

मेरे शरीर में रोमांच हो आया। सारे संसार को चुनौती देनेवाला आज भी भारत में मौजूद है। इतना महान् आश्वासन देनेवाला, गामा के अतिरिक्त, दूसरा माई का लाल नज़र नहीं आता।

मैं बोला—"सुना है कि अब आपने कुश्ती लड़ना छोड़ दिया है।" गामा ने कहा और बहुत ही चुभते हुए ढङ्ग से कहा—"आखिर मैं लड़ूँ तो किससे! कोई मुक़ाबला करनेवाला ही दिखलायी नहीं पड़ता। यदि आज भी कोई ऐसा पट्ठा मिल जाय तो मैं तैयार हूँ।"

बोलते बोलते वह पुरुषसिंह फिर उत्तेजित-सा हो गया। "अजात-शत्रु" शब्द का सच्चा अर्थ उसी दिन मेरी समझ में आया। गामा अजातशत्रु है। मैं बोला—"आपने कितने विदेशी पहलवानों को अब तक पराजित किया होगा, कुछ याद है?"

"नहीं।" गामा बोला—"मैं विदेशों में औसत दस पहलवानों को नित्य पछाड़ता था। यह क्रम एक वर्ष तक चला और सारे योरप के पहलवानों को इस तरह मैंने पछाड़ कर ही दम लिया। एक बार कछनी बाँधकर क्रमशः दस-पन्द्रह पहलवानों से निबटता था। जो सामने आया वही चारों ख़ाने चित्त।"

मैंने पूछा—"विदेशी पहलवानों को आप कैसा समझते हैं?"

गामा ने कहा—"बहुत अच्छे। वे बड़े बलवान् होते हैं, पर भारतीय कुश्ती ऐसी होती है जिसके सामने कोई ठहर नहीं सकता। हमारे दाव-पेंच इतने पूर्ण हैं कि पलक मारते ही बलवान् से बलवान् विरोधी को नीचे गिराकर विवश कर दिया जा सकता है।"

"और विदेशी दाव-पेंच?" मैंने फिर प्रश्न किया। गामा सोचकर बोला—"विदेशी पहलवानों का अपना ढङ्ग होता है। उनकी कुश्ती बल-प्रधान है और हमारी कला-प्रधान। बल के मुक़ाबिले में कला का विजयी होना स्वाभाविक है।"

इतना बोलकर गामा चुप हो गये। धूप तेज़ हो गयी थी। हमारे सामने घास से भरा मैदान था। तेज़ धूप पड़ने से भीगी हुई घास से एक प्रकार की खुशबूदार भाप निकलती है। हवा में इसी भाप की गर्मी थी और ऊँचे ऊँचे वृक्षों की पत्तियाँ सूर्य के प्रकाश में झिलमिला रही थीं। गामा ने फिर कहा—"आप यह मत सोचें कि गामा विश्वविजयी है, आप यह भी मत सोचें कि गामा

एक बेजोड़ पहलवान है। मुझसे भी बलवान् संसार में हैं। मैं स्वयं आज तक यह नहीं समझ सका कि मैंने कैसे इतनी सफलता पायी। दैत्य जैसे विशालकाय पहलवानों को मैंने बच्चों की तरह उठा उठाकर पटका है। मैंने देखा है कि बड़े-बड़े दैत्याकार पहलवान मेरे सामने खड़े होते ही घबरा उठे, उनके अंग ढीले हो गये और वे अपने शरीर का झोंका स्वयं नहीं संभाल सके—चित्त हो गये। मुझे विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता। मैं जानता हूँ कि यह मेरी विशेषता नहीं है। ईश्वर का यह काम है, मेरे द्वारा उसने विश्वविजय का खेल किया। मैं यह सोचने की ग़लती नहीं कर सकता कि एक मनुष्य सारे संसार को चुनौती देता फिरे और एक दिन विश्वविजयी बनकर घर लौटे। मानव आखिर मानव ही ठहरा। सच पूछिये तो मानव बेजोड़ हो ही नहीं सकता। बेजोड़ तो एक मात्र परमात्मा ही है।"

मैं चुपचाप गामा की बातें सुन रहा था और वे बोल रहे थे। अन्त में उन्होंने कहा—"आज संसार अपने स्वामी को भूलकर किस स्थिति में पहुँच गया है? यदि हम सदा ईश्वर को सामने रखकर जीवन-निर्वाह करें तो कभी विफलता और कष्ट न प्राप्त हो।"

मैंने पूछा—"क्या आप यह स्वीकार करते हैं कि सारी सफलताओं का श्रेय परमात्मा को ही है? आपने तो सीमाहीन सफलता पायी है।"

गामा ने हाथ जोड़कर कहा—"आप ऐसा न सोचिये। मैं अपने को जानता हूँ। मेरे द्वारा जो कुछ हुआ है वह एक असाध्य कर्म है। यह बात ही सत्य है कि ऐसे असाध्य कर्म मानव नहीं कर सकता। यह ईश्वरीय शक्ति है जो मुझमें या किसी में भी चमक-कर असाध्य को सहज साध्य करके संसार को दिखला देती है।"

गामा की इस परम सत्य वाणी का निरादर कौन कर सकता है? यह तो सत्य है कि बिना पराशक्ति की सहायता के हम कुछ भी नहीं कर सकते। आख़िर अवयवों के हिसाब से सभी मानव समान हैं, पर उनमें कोई हीन और कोई लोकपूज्य कैसे हो जाता है? यह तो पराशक्ति का ही काम है जो रजकण को हिमालय का आकार प्रदान कर देता है।

गामा ने कहा—"मन वचन से पवित्र रहना और सदा ईश्वर का सहारा रखना, यही मेरा मूल मन्त्र है। मैं हर घड़ी कर्ता से डरा करता हूँ और सोचता हूँ कि यह शरीर उसका निवासस्थान है— इसे सदा पवित्र रखना चाहिए, पवित्र रखता हूँ। मन वचन को भी पवित्र रखता हूँ। केवल बल या दाव-पेंच ही विश्वविजय के लिए पर्याप्त नहीं। बल और दाव-पेंचों में उग्रता तो ईश्वर ही पैदा करता है। कभी कभी तो मामूली ठोकर से भी घड़ा फूट जाता है।"

गामा पक्के आस्तिक हैं और उनका विचार है कि गुण तो कम या बेशी मात्रा में प्रत्येक देहधारी को प्राप्त होते हैं, पर उन

गुणों का विकास होता है ईश्वरीय अनुकम्पा से। ईश्वर-विमुख-प्राणी अन्त में नष्ट हो जाता है। सफलता और सिद्धि प्राप्त करने की यदि कामना हो तो हमें पक्का आस्तिक और चरित्रवान् बनना चाहिए। अच्छे फौलाद पर ही 'धार' ठहरती है। कच्चा लोहा हुआ तो 'धार' एक पेंसिल काटते ही नष्ट हो जायगी। अपने को पहले फौलाद बनाकर ही हम 'धार' का सुख प्राप्त कर सकते हैं—ये ही हैं गामा के विचार।

एक अशिक्षित, जिसका सारा जीवन अखाड़े में व्यतीत हुआ, ऐसे पहलवान के मुँह से ऐसी बातें सुनने की मुझे क़तई आशा न थी। गामा से मैंने पूछा—"क्या, उम्र अधिक हो जाने पर व्यायाम का त्याग कर देना अच्छा होता है?"

"कभी नहीं।" गामा ने कहा—"जब तक शरीर में उठने-बैठने की ताक़त रहे, व्यायाम किये जाइये। अगर खाट पर भी पड़े रहिये तो यही सोचिये कि खाट से उठते ही व्यायाम आरंभ कर देंगे और ऐसा ही कीजिये भी। व्यायाम न करना तो जीते-जी क़ब्र में जाकर लेट जाना है। आप व्यायाम को ही अपना नेक और ईमानदार साथी समझें।"

"गया को मैं प्यार करता हूँ। मेरे जीवन के सबसे अच्छे दिन आप लोगों के साथ व्यतीत हुए हैं। गया में रहते समय ही मैंने बड़ी उन्नति की। आप गया पहुँचकर पत्र अवश्य लिखियेगा।"

बातें समाप्त हो गयी थीं। दिन भी चढ़ गया था। मैं अपने घर लौटा। गामा का वह तेजोमय रूप आँखों में बस-सा गया है। मैंने बहुत से पहलवान देखे हैं। राममूर्ति, कीकड़-सिंह आदि को देख चुका हूँ। गामा अत्यन्त सुलझे हुए, नम्र, हँसमुख और मिलनसार व्यक्ति हैं। उनमें एक महान् व्यक्ति होने के योग्य सारे गुण हैं। गामा चिरायु हों!

ख़ुशरू - सुंदर
जवाँ - नौजवान
सारस - लंबी टांगोंवाला एक पक्षी
फड़क उठना - जोश में आना
ख़ाक छानना - खोजना
"ज़ोर" करना - अभ्यास के लिए कुश्ती लड़ना
प्रखर - तेज़
उपयुक्त - उचित
"गुलाम" - एक पहलवान का नाम
पखारना - धोना
दाँतों उँगली काटना - आश्चर्य प्रकट करना
झख मारना - बेकार रहना
नाज़ - अभिमान
ताव - गुण, ऐंठन, शान
उजड्ड - गँवार
चुनौती - ललकार
पराशक्ति - दैवी शक्ति
अवयव - अंग
क़तई - बिलकुल

बापू के दर्शन

आचार्य कृपालानी

[अखिल भारतीय कांग्रेस के मंत्री की हैसियत से ज़बीर भाई कृपालानी से सब परिचित हैं। आप सिंध में पैदा हुए, पाले-पोसे गये, वहीं पढ़ाई-लिखाई हुई। फिर बिहार के मुज़फ़्फ़रपुर कालेज में इतिहास के प्रोफेसर बन कर आये। वहीं चंपारन सत्याग्रह के समय आप गान्धीजी के साथ हुए और तब से अब तक उन्हीं के सिद्धान्त के अनुयायी हैं। बड़े मेधावी और अच्छे वक्ता हैं। मेरठ का गान्धी आश्रम आपकी तपस्या का नमूना है। आपकी पत्नी सुचेताजी भी देश-सेवा में लगी हैं। आप वंग महिला हैं। आप कस्तूरबा निधि की संगठन-मंत्री थीं।

कृपालानीजी ने गान्धीजी के जीवन के एक पहलू को अपने इस छोटे निबन्ध में दिखाया है और यह पहलू पाठक के सामने बहुत साफ़ आ जाता है।]

आज बापूजी की बात कहने लगा हूँ; उससे पूर्व थोड़ी अपनी कहानी भी सुना दूँ। इससे मेरा कथन लोगों को अधिक अच्छी तरह समझ में आ सकेगा, मैं बालपन से ही विद्रोही रहा हूँ। घर में विद्रोह, पाठ-शाला में विद्रोह, सर्वत्र विद्रोह पहचानता रहा हूँ। शिक्षकों के साथ भी मेरे अनेक झगड़े हुए हैं। दो बार तो मुझे कॉलिज से निकाल दिया गया था। मुझे कॉलिज बदलने पड़े हैं, नौकरियाँ बदलनी पड़ी हैं, इतना ही नहीं, प्रान्त भी बदलने पड़े हैं। मैं अपने मित्रों को भी कष्ट देता हूँ। शत्रु की तो कोई बात ही नहीं। इस कारण मुझे कोई अपने पास नहीं रखता।

आजकल क्रान्ति की बातें ख़ूब होती हैं। जहाँ जाओ, वहाँ 'इनक़िलाब ज़िन्दाबाद' की आवाज़ सुनाई देती है; परन्तु उस ज़माने में इनक्लिाब पुकारनेवाला कोई नहीं था, मरनेवाले थोड़े से थे। शायद उन थोड़ों में एक मैं भी था। हमको अहिंसा में विश्वास न था। हमें जहाँ-जहाँ अवसर मिलता वहाँ-वहाँ लोगों को, अंगरेज़ी राज्य को निकाल देने की बात समझाया करते। विद्याभ्यास पूरा होते ही मैं अध्यापक बन गया। वह क्यों? दूसरों पर क्रान्ति की रंगत लगाने के लिए। सरकार मुझे वेतन देती थी, और मैं सरकार के विरुद्ध उत्तेजना फैलाता था। ऐसे समय में जब बापूजी आये तब मैं मुज़फ्फरपुर (विहार) में अध्यापक था, इतिहास पढ़ाता था।

बापूजी जब सन् १९१४ में आफ़्रिका से भारत आये और अपने लड़कों—अर्थात् अपने आश्रम के विद्यार्थियों—को लेकर कविवर रवींद्रनाथ ठाकुर के शान्ति-निकेतन में उतरे, तब वे 'महात्मा' की उपाधि से विभूषित नहीं हुए थे। उस समय वे मि० गान्धी कहलाते थे। फिर भी वे एक विचित्र प्राणी तो थे ही। विचित्र प्राणी को देखने का किसका मन नहीं होता? मैं भी कुतूहल-वश उनसे मिलने को निकला।

उनका शरीर इतना छोटा और पतला था कि किसी को यह नहीं प्रतीत हो सकता कि यहाँ कोई महापुरुष बैठा है। परन्तु जो दो वस्तुएँ उनको सबसे पृथक् सूचित कर देती थीं, वे थीं—उनकी

वाणी और आँखें। उनकी आँखों में कोई अद्भुत ज्योति थी। उनकी वाणी में अजस्र शक्ति थी। उनकी आवाज़ भारी नहीं थी, तो भी ऐसा मालूम होता था मानो मेघ गरज रहा हो। खूब विचार-विचार कर बोल रहे हों, इस प्रकार के शब्दों का उच्चारण करते थे। वे शब्द आन्तरिक गहराई से आ रहे हों, ऐसा प्रतीत होता था। जो कुछ कह रहे हैं वे करके छोड़ेंगे, इस प्रकार की ध्वनि उसमें से सुनायी देती थी। इसी कारण उनका क्षीण और मन्दगति शब्द-प्रवाह भी प्रबल, शक्तिशाली लगता था।

उस समय बापू की पोशाक, आहार, सब कुछ जुदा था। आज जो गान्धी-टोपी घर-घर प्रख्यात हो चुकी है, वही गान्धी-टोपी वे पहनते थे। पैर नंगे; आहार में मूँगफली! फलाहार करने का उनका नियम था; परन्तु यहाँ आकर देखा कि फलाहार तो बहुत महँगा पड़ेगा, और महँगा आहार ग़रीब को कैसे पुराएगा? अतः उन्होंने मूँगफली शुरू की। यह तो उनकी बाहर की बात हुई।

प्रथम मुलाकात में ही मैं समझ गया कि यह मनुष्य जो काम हाथ में लेगा, उसे पूर्ण किये बिना छोड़ेगा नहीं। या तो काम को समाप्त कर डालेगा, अथवा अपने को ही समाप्त कर डालेगा। इसके अतिरिक्त उस समय उसमें एक दूसरी शक्ति भी प्रतीत हुई। वह है मनुष्यों को अपनी ओर आकृष्ट करने की शक्ति। इस आकर्षण का कारण यह था कि यह मनुष्य सर्वथा प्रामाणिक था। ऐसे एकाग्र, दृढ़, प्रामाणिक तथा विचारशील मनुष्य को मैंने पहिले

कभी नहीं देखा था। महापुरुष मैंने अनेक देखे थे; परन्तु उनके जैसा मनुष्य, उनकी जैसी शक्ति मैंने कहीं भी नहीं देखी थी। उस समय के बहुत बड़े-बड़े अग्रनायकों ने भारतवर्ष की ग़रीबी के विषय में बड़ी-बड़ी पुस्तकें लिखी थीं; परन्तु ग़रीबी क्या वस्तु है, यह कभी नहीं जाना था। उन लोगों ने स्वदेशी के विषय में बड़े-बड़े उत्तेजक भाषण दिये थे, परन्तु स्वदेशी कपड़ा कैसा होता है, यह कभी नहीं देखा था। इस प्रकार का दुहरा जीवन साथ-साथ मैंने इसी मनुष्य में पाया।

इस प्रथम मुलाकात के समय बापू से मैंने दो बातें कही थीं; वे अभी तक मुझे भली प्रकार याद हैं। उस समय हम दोनों अंग्रेज़ी में बातें करते थे। हिन्दी तो बापू बाद को बोलने लगे। उस समय तो मैं कदाचित् टूटी-फूटी हिन्दी बोल सकता था। परन्तु मि० गान्धी को तो हिन्दी आती ही नहीं थी, इसलिए मैंने उनसे अंगरेज़ी में कहा—"Whenever you think that you are going to do any real piece of work, you can call me," (व्हेनेवर यू थिंक दट यू आर गोइंग टु डू एनी रियल पीस आफ़ वर्क, यू कैन काल मी) अर्थात् 'जब कभी आप कोई वास्तविक काम हाथ में लेने का विचार करें, तब आप मुझे बुला सकते हैं।' एक और बात भी मैंने उनसे कही; वह यह थी—"आपके आफ़्रिका के कार्य के लिए जिन-जिन लोगों ने आपकी प्रशंसा की है, उनमें से एक भी आदमी यहाँ आपके काम में

सहायता नहीं देगा। आप जिनको पहिचानते भी नहीं होंगे ऐसे ही मनुष्य आपके पास एकत्र होंगे और सहायता देंगे।"

[२]

इस प्रकार अपनी प्रथम मुलाक़ात में ही मैंने अपने को उनके प्रति सौंप दिया था, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि बापू की सभी बातें मुझे मान्य हैं—कदापि नहीं! बापू जब से आये हैं, संयम की बातें करते रहते हैं। मुझमें संयम है ही नहीं! मुझे कोई चाय दे, मैं पी जाऊँगा; दूध दे, वह भी पी जाऊँगा; बड़े पलंग पर सुलाया जाय तो सो जाऊँगा—पीछे नींद आये या न आये। इस प्रकार हमारे बीच में कुछ भी मेल नहीं है। मेरे जैसा विद्रोही अनुयायी गान्धीजी का दूसरा कोई नहीं होगा। इतना होते हुए भी मैंने उनकी अधिनायकता स्वीकार की है। इसका कारण बताता हूँ। दुनिया में दो प्रकार के—या कहो तीन प्रकार के—मनुष्य होते हैं। पहिला प्रकार उनका है जो अपनी महत्ता और शक्ति को समझते हैं। उनमें दूसरों को ले चलने की भी शक्ति है। दूसरा प्रकार उन लोगों का है, जिनमें दूसरों को चलाने की शक्ति नहीं होती। वे स्वयं अनुयायी होने के लिए सृजे गये होते हैं। इसलिए वे लोग दूसरों की महत्ता और शक्ति को समझ सकते हैं; तथा स्वीकार भी कर लेते हैं। तीसरे प्रकार के लोग वे होते हैं जिनमें महत्ता और शक्ति नहीं होती; वे दूसरों की महत्ता, और क्षमता को समझ नहीं सकते, स्वीकार भी नहीं कर

सकते। ये लोग कुछ नहीं कर सकते। इनकी स्थिति त्रिशंकु जैसी बड़ी विचित्र होती है। हम लोग भी बिना गुरुवाले लोगों को—'निगुरा'—गुरु-विहीन कहते हैं; एक ये लोग भी होते हैं। ये लोग कभी कोई कार्य नहीं कर सकते। प्रथम प्रकार के लोग स्वयं गुरु बन जाते हैं, दूसरे प्रकार के लोग दूसरों को गुरु बना लेते हैं, इसी कारण ये जगत में काम कर सकते हैं। मैंने अपने विषय में सोचा था कि मैं अकेला देश के भार को नहीं उठा सकता, मुझमें अग्रणी बनने की शक्ति नहीं है, इसलिए मुझे कोई अग्रणी खोज ही लेना चाहिए। मुझे किसी के हाथ के नीचे काम करना चाहिए, तभी मेरी अल्प-शक्ति भी उपयोगी हो सकेगी। अन्यथा यह यों ही बरबाद हो जायगी। मैंने देखा कि इस व्यक्ति में अग्रणी बनने की शक्ति विद्यमान है। यह मनुष्य काम करेगा, जो काम हाथ में लेगा पूरा करके छोड़ेगा, मुझे उसके प्रति विश्वास हो गया, और मैंने उसे अपना अग्रणी बना लिया।

प्रायः लोग मुझसे पूछते हैं कि आप हिंसा में श्रद्धा रखनेवाले हैं और गान्धीजी परम अहिंसावादी! गान्धीजी ब्रिटिश राज्य में श्रद्धा रखनेवाले हैं और आप उनका उच्छेद करनेवाले, तो आपने उनका नेतृत्व किस प्रकार स्वीकार किया? उत्तर—मैंने इस मनुष्य में एक शक्ति देखी है। वह है या तो कार्य का अन्त लगाना अथवा अपना अन्त कर देना। इसलिए मैंने इनको अपना नेता स्वीकार किया है। दूसरा, उनमें सच्चाई है। आज वे

अहिंसा का समर्थन करते हैं ; परन्तु जिस क्षण उनको यह समझ में आ जायगा कि अहिंसा से कुछ सिद्ध होनेवाला नहीं है उसी समय वे हिंसात्मक मार्ग पर आरूढ़ होकर जिस उग्रता से लड़ेंगे, वैसा दूसरा नहीं लड़ेगा। इस एक ही बात ने मुझे उनके प्रति आकृष्ट किया है, इसलिए मैं उनके साथ सम्मिलित हुआ हूँ। हिंसा के विषय में तो मेरा विश्वास हो गया है कि बापू को अहिंसा से डिगा देना, विचलित करना अशक्य वस्तु है। उनको जिस क्षण यह प्रतीत हुआ कि ब्रिटिश राज्य भारत के कल्याण के लिए नहीं है, उस समय उन्होंने उसके लिए ऐसे कठोर विशेषण प्रयुक्त किये जैसे लोकमान्य तिलक ने भी नहीं प्रयुक्त किये थे। ब्रिटिश शासन को उन्होंने "शैतानी राज्य" कहा था, और वह भी इतनी उग्रता के साथ कि समस्त देश उसको शैतान कहने लगा, नन्हें बालक भी उसे शैतानी सरकार कहते ; तो भी उनको कोई पकड़ता नहीं।

उसके जैसा काम करनेवाला और काम लेनेवाला अब तक मैंने नहीं देखा। एक समाजवादी मित्र ने मुझसे पूछा—'आप समाजवादी दल में क्यों नहीं सम्मिलित हो जाते?" मैंने कहा, "मैं तो तैयार हूँ ; परन्तु मुझे इस मनुष्य में जैसी शक्ति दिखायी देती है, वैसी शक्ति तुम में नहीं। मुझे तो काम करना है ; मुझमें नायक बनने की शक्ति नहीं है। अतः मैंने उसका अनुयायी बनना स्वीकार किया है। जिस घड़ी मुझे तुम में शक्ति दीख पड़ेगी, मान लेना कि मैं तुम्हारे साथ खड़ा हूँ। यह तो वकील हैं;

दोनों पक्षों के लिए युक्ति कर सकते हैं; जब जो केस हाथ में हो, उसके लाभ की बात बोलेंगे, उसको सच्चा कर दिखायेंगे। बुद्धि तो सभी प्रकार की दलीलें खोज निकालती है।"

परन्तु आज तो उस जैसा कोई मनुष्य मुझे दिखायी नहीं पड़ता। वह छोटे-छोटे कामों में भी अपना प्राण होम देने के लिए तैयार होते रहते थे। उस जैसा प्राण हथेली पर रखकर घूमनेवाला मैंने दूसरा नहीं देखा। अपने प्राणों को संकट में डालकर उसको यह प्रतीत नहीं होता था कि मैं कोई महान त्याग कर रहा हूँ। छोटे-छोटे कामों में भी वह बड़े-बड़े कामों को सम्हाला हुआ समझता। वह टट्टी साफ़ करता, और मानता कि मैं देश का उद्धार कर रहा हूँ। वह हरिजनों का कार्य करता, और मानता कि मैं देश का उद्धार करता हूँ। जिस कार्य को कुछ लोग (old dames' work) पुरानी बुढ़िया का काम कहते हैं, उस चरखे में भी वह देश का उद्धार देखता। कोई भी छोटा काम उसको छोटा नहीं प्रतीत होता। उसमें उसको स्वराज्य के दर्शन होते। उसी प्रकार वह उन वस्तुओं में स्वराज्य के दर्शन करता। इसी कारण उसके साथ कोई प्रतिस्पर्द्धा नहीं कर सकता। मुझे तो यह प्रतीत होता है कि उसकी फ़िलासफ़ी का एक महत्वपूर्ण अंग यह है कि उसने कहीं भी प्रतिस्पर्द्धा के लिए अवकाश नहीं रखा। तुम एक बन्दूक रखोगे तो सामनेवाला दो बन्दूक लायेगा। परन्तु यदि तुम अहिंसक

बन जाओगे, बन्दूक ही नहीं रखोगे तो सामनेवाला क्या कर सकता है? कपड़े के पुतलीघरों के साथ तुम लोग स्पर्धा शुरू करोगे, तो तुमको कीमत आदि सभी बातों की चिन्ता करनी पड़ेगी। वह तो कहता, मुझे मिलों का कपड़ा ही नहीं चाहिए। फिर स्पर्द्धा किस बात की?

आज तक संसार में जितने महापुरुष हुए हैं वे इसी प्रकार छोटे-छोटे कामों में बड़े-बड़े कामों के निहारनेवाले थे। क्राइस्ट कौन था? एक बढ़ई था। लोगों के छोटे कामों में बड़े काम समा जाते हैं; बड़े कामों में छोटे नहीं समाते। बड़े काम करना सरल है; छोटे काम सरल नहीं हैं।

आज तो उसके सिवाय मुझे अन्यत्र कहीं भी शक्ति नहीं दिखायी देती। जब दिखायी देगी तब की बात तब। भले ही उसकी शक्ति अधूरी हो, परंतु इस कारण उसे छोड़ा नहीं जा सकता। मेरी कुटिया कैसी भी हो, महल के लोभ में उसे छोड़ क्यों दिया जाय। जब तक महल तैयार नहीं होता, तब तक मैं कुटिया नहीं छोड़ सकता। यदि छोड़ दूँ तो कुटिया तो जायगी ही; और महल भी नहीं मिलेगा। ऐसी मूर्खता मुझे नहीं करनी।

प्रामाणिक - विश्वसनीय

उच्छेद करना - उखाड़ फेंकना, नाश करना

प्रतिस्पर्द्धी - बराबरी या होड़ करनेवाला

काकी

श्री सियारामशरण गुप्त

[जन्म १८९५ ई०। स्थान—झाँसी (U. P.)। आप सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त के छोटे भाई हैं। आपने कविता, कहानी उपन्यास, नाटक और निबन्ध लिखे हैं। हिन्दी साहित्य का शृंगार करनेवाले साहित्यकों में अग्रणी हैं।

इस कहानी में बालक के अबोध मातृप्रेम का करुण-पूर्ण चित्र खींचा गया है जो पाठक को रुला देता है।]

उस दिन बड़े सबेरे जब श्यामू की नींद खुली तब उसने देखा—घर-भर में कुहराम मचा हुआ है। उसकी काकी उमा एक कम्बल पर नीचे से ऊपर तक कपड़ा ओढ़े भूमि-शयन कर रही है और घर के सब लोग उसे घेरकर बड़े करुण स्वर में विलाप कर रहे हैं।

लोग जब उमा को श्मशान ले जाने के लिए उठाने लगे तब श्यामू ने बड़ा उपद्रव मचाया। लोगों के हाथों से छूटकर वह उमा के ऊपर जा गिरा और बोला—काकी तो सो रही हैं। उन्हें इस तरह उठाकर कहाँ लिये जा रहे हो? मैं न ले जाने दूँगा।

लोगों ने बड़ी कठिनाई से उसे हटा पाया। काकी के अग्नि-संस्कार में वह न जा सका। एक दासी राम-राम करके उसे घर पर ही संभाले रही।

यद्यपि बुद्धिमान गुरुजनों ने उसे विश्वास दिलाया कि उसकी काकी उसके मामा के यहाँ गयी है, परन्तु असत्य के आवरण में सत्य बहुत समय तक छिपा न रह सका, आसपास के अन्य अबोध बालकों के मुँह से ही वह प्रकट हो गया। यह बात उससे छिपी न रह सकी कि काकी और कहीं नहीं, ऊपर राम के यहाँ गयी है। काकी के लिए कई दिन तक लगातार रोते-रोते उसका रुदन तो क्रमशः शान्त हो गया, परन्तु शोक शान्त न हो सका। जिस तरह वर्षों के अनन्तर एक ही दो दिन में पृथ्वी के ऊपर का पानी अगोचर हो जाता है, परन्तु बहुत भीतर तक उसकी आर्द्रता बहुत दिन तक बनी रहती है, उसी प्रकार वह शोक उसके अन्तस्तल में जाकर बस गया। वह प्रायः अकेला बैठा शून्य मन से आकाश की ओर ताका करता।

एक दिन उसने ऊपर एक पतंग उड़ता देखा। न जाने क्या सोचकर उसका हृदय एकदम खिल उठा। विश्वेश्वर के पास जाकर बोला—काका मुझे एक पतंग मँगा दो। अभी मँगा दो।

पत्नी की मृत्यु के बाद से विश्वेश्वर बहुत अन्यमनस्क से रह रहे थे। 'अच्छा मँगा दूँगा'—कहकर वे उदास भाव से बाहर चले गये।

श्यामू पतंग के लिए बहुत उत्कण्ठित हो उठा। वह अपनी इच्छा किसी तरह से न रोक सका। एक जगह खूँटी पर

विश्वेश्वर का कोट टँगा हुआ था। इधर-उधर देखकर उसने उसके पास एक स्टूल सरका कर रक्खा और ऊपर चढ़कर कोट की जेब टटोली। उसमें से एक चवन्नी का आविष्कार करके वह तुरन्त वहाँ से भाग गया।

सुखिया दासी का लड़का भोला श्यामू का समवयस्क साथी था। श्यामू ने उसे चवन्नी देकर कहा—अपनी जीजी से चुपचाप एक डोर और पतंग मँगा दो। देखो, ख़ूब अकेले में लाना; कोई जान न पावे।

पतंग आया। एक अंधेरे घर में, डोर बाँधी जाने लगी। श्यामू ने धीरे से कहा—भोला, किसी से न कहो तो एक बात कहूँ।

भोला ने सिर हिलाकर कहा—नहीं, किसी से न कहूँगा।

श्यामू ने रहस्य खोला, कहा—मैं यह पतंग ऊपर राम के यहाँ भेजूँगा। इसे पकड़कर काकी नीचे उतरेंगी। मैं लिखना नहीं जानता, नहीं तो इसपर नाम लिख देता।

भोला श्यामू से अधिक समझदार था। उसने कहा—बात तो बड़ी अच्छी सोची, परन्तु एक कठिनाई है—यह डोरी पतली है। इसे पकड़कर काकी तो उतर नहीं सकती। इसके टूट जाने का भय है। पतंग में मोटी रस्सी हो तो सब ठीक हो जाय।

श्यामू गंभीर हो गया। मतलब—यह बात लाख रुपये की सुनाई गयी है; परन्तु कठिनाई यह थी कि मोटी रस्सी कैसे मँगायी जाय? पास में दाम है नहीं और घर के जो आदमी उसकी काकी को बिना दया-माया के जला आये हैं, वे उसे इस काम के लिए कुछ नहीं देंगे। उस दिन श्यामू को चिन्ता के मारे बड़ी रात तक नींद नहीं आयी।

पहले दिन की ही तरकीब से दूसरे दिन उसने विश्वेश्वर के कोट से एक रुपया निकाला। ले जाकर भोला को दिया और बोला—देख, भोला, किसी को मालूम न होने पावे; अच्छी अच्छी दो रस्सियाँ मँगवा दे, एक रस्सी ओछी पड़ेगी। जवाहर भैया से मैं एक कागज़ पर 'काकी' लिखवा रक्खूँगा। नाम की चिट रहेगी तो पतंग ठीक उन्हीं के पास पहुँच जायगा।

दो घंटे बाद प्रफुल्ल मन से श्यामू और भोला अंधेरी कोठरी में बैठे पतंग में रस्सी बाँध रहे थे। अकस्मात् शुभ कार्य में विघ्न की तरह उग्र मूर्ति धारण किये हुए विश्वेश्वर वहाँ आ घुसे। भोला और श्यामू को धमकाकर बोले—तुमने हमारे कोट से रुपया निकाला है?

भोला सकपकाकर एक ही डाँट में मुखबिर बन गया, बोला—श्यामू भैया ने रस्सी और पतंग मँगाने के लिए निकाला था।

विश्वेश्वर ने श्यामू को दो तमाचे जड़कर कहा—चोरी सीखकर जेल जायगा। अच्छा आज तुझे अच्छी तरह समझता हूँ—कहकर दो चार थप्पड़ और जड़कर पतंग फाड़ डाला! अब रस्सियों की ओर देखकर उन्होंने पूछा—यह किसने मँगायी?

भोला ने कहा—इन्होंने मँगायी थी। कहते थे—इससे पतंग तानकर काकी को राम के यहाँ से नीचे उतारेंगे।

विश्वेश्वर एक क्षण के लिए हतबुद्धि होकर खड़े रह गये।

उन्होंने फटा हुआ पतंग उठाकर देखा। उसपर एक कागज़ चिपका था, जिस पर लिखा हुआ था—"काकी"।

आवरण - ढक्कन
अगोचर - लोप, गायब
आर्द्रता - गीलापन
अन्य-मनस्क - अनमना, उदास
उत्कंठित - बहुत उत्साहित
समवयस्क - एक ही उम्र का
ओछी - छोटी
मुखबिर - Approver

राड़ की जड़ हाँसी

श्री घनश्यामदास बिड़ला

[आप पिलानी (जयपुर) के हैं। हिन्दी का सौभाग्य है कि श्री घनश्यामदासजी बिड़ला जैसे भारत के प्रधान व्यापारी तथा अर्थ-शास्त्र और राजनीति के अगाध पंडित हिन्दी में लिखते हैं। आपके विचार गान्धीजी से प्रभावित हैं। आपकी लेखनी पर भी उनका असर है। आपकी 'बिखरे विचार', 'बापू' आदि पुस्तकें बहुत ही उच्चकोटि की हैं। भाषा सरल और सरस है। विषय भी बड़े अच्छे ढंग से प्रतिपादित होता है।

इस लेख में आपने मधुर हास्य के महत्त्व को बड़े अच्छे ढंग से समझाया है।]

"तीर कमनिया तरकसबन्द। भोजराज तुम मूसरचन्द"

ऐसा जब किसी ने भोजराज महाशय से कहा तो पता नहीं भोजराजजी खिलखिलाकर हँस पड़े या क्रुद्ध होकर मारने दौड़े। मेरा तो ख़याल है कि मारने दौड़े होंगे; क्योंकि हमारे यहाँ मज़ाक उड़ाना छिछोरापन है और उसे बर्दाश्त करना नामर्दों की निशानी है। इसलिए किसीने कह दिया कि "रोग की जड़ खाँसी और राड़ की जड़ हाँसी"। कोई द्वेष-वश अपमानित करे, या मारने को दौड़े तो झगड़ा होना समझ में आ सकता है; पर मज़ाक में भी झगड़ा हो यह भारतीय संस्कृति का दूषण ही मानना चाहिए। बाहरी देशों से आनेवाले लोग अक्सर कहा करते हैं कि भारतीय बालक भी गम्भीर मुखाकृति का होता है। फिर बड़े-बूढ़े का तो कहना ही

क्या ? वे तो मानो बँधना-बोरिया बाँधकर आज शाम की ट्रेन से ही यमपुरी की यात्रा करनेवाले हों, ऐसी मुखाकृति बनाकर बैठते हैं। कोई हँसता है तो बड़े-बूढ़े डाँटकर कहा करते हैं—"क्या हो-हो करते हो"।

हमारे साहित्य में भी हास्य-रस की अत्यन्त कमी पायी जाती है। शान्त या गंभीर, करुण, शृंगार आदि रस सभी साहित्यिक ग्रन्थों में अधिकता से मिलेंगे, पर हास्य रस तो यत्र-तत्र और सो भी स्वल्प मात्रा में।

इससे इतना तो साबित हो जाता है कि भारतीय संस्कृति ने हँसने की इज़ाज़त नहीं दी। इतना ही नहीं, इसकी सख़्त मुमानियत मालूम होती है। किसी सन्त ने गाया "बालपना हँस खेल गँवाया", "बालस्तावत् क्रीडासक्तः"। इसमें क्या जुर्म हुआ यदि बच्चे हँसें या खेलें? क्या सन्त लोग यह चाहते थे कि लड़के रो-रो कर रट लगाया करे? "जिवड़ा दो दिन का मेहमान" जो संसार की क्षण-भंगुरता का विचार करके रोते हैं।

कार्टून की कला योरोप में काफ़ी विकसित हो चली है। जिनके कार्टून छपते हैं वे अभिमान से मन में फूले नहीं समाते। "हिन्दुस्तान टाइम्स, दिल्ली" का शंकर (आजकल 'शंकरस् वीक्ली' का) इस कला में अत्यन्त निपुण है। उसने आज तक किसी भी विशिष्ट व्यक्ति को अछूता नहीं छोड़ा। क्या वाइसराय और क्या दूसरे अफ़सर, सबके कार्टून उसने बनाये और क़द्रदानी भी पायी। हर

अफ़सर अपने अपने कार्टून की क़ीमत दे-देकर खरीदता रहा है; पर एक मर्तबा किसी प्रतिष्ठित भारतीय नेता ने मुझसे यह शिकायत की कि 'साहिब, आपका व्यंग्य-चित्रकार हमारा बड़ा मज़ाक उड़ाता है।' भविष्य के लिए उन महोदय का कार्टून बन्द कर दिया गया। इससे उलटा योरोप के लोग अपने कार्टून देखने के लिए लालायित रहते हैं, यद्यपि इटली में मुसोलिनी और जर्मनी में हिटलर इसके अपवाद हैं।

स्काच लोग बड़े कंजूस माने जाते हैं और लोग उनकी दिल्लगी भी ख़ूब उड़ाते हैं। इसका प्रतीकार उन्होंने इस प्रकार किया कि वे लोग अपनी दिल्लगी खुद उड़ाने लगे। किसी यहूदी ने कहा कि हम स्काच लोगों से अधिक कंजूस हैं, इस बात को स्काच साहब ने बड़े जोश के साथ अस्वीकार किया और कहने लगे कि ऐसा नहीं है। एक यहूदी की दूकान पर एक स्काच माल खरीदने गया था। स्काच को पहले ही सावधान कर दिया गया था कि यहूदी दुगुने दाम माँगा करता है, इसलिए मोल-मुलाई ठीक करना, ठगे न जाना। स्काच साहब सावधान तो थे ही। एक छाते की क़ीमत पूछी। यहूदी ने कहा—दस शिलिंग। इस पर स्काच साहब ने फ़रमाया, यह तो बहुत ज़्यादा है, हम तो पाँच शिलिंग देंगे। यहूदी ने कहा—पाँच तो नहीं, पर तुम सज्जन मालूम होते हो, इसलिए छाता आठ शिलिंग में बेच दूँगा। इन्होंने तो पहले से ही गणित का मार्ग अख़्तियार कर लिया था। इनसे

कहा गया था कि यहूदी दूना दाम माँगा करता है। इसलिए वह जितना माँगता था स्काच साहब उसके आधा कहते थे। जब यहूदी पाँच शिलिंग पर पहुँचा तब तो स्काच महाशय अढ़ाई शिलिंग पर उतर चुके थे। यहूदी धीरज खो बैठा और उखड़ कर बोला "तुम तो पूरे मक्खीचूस मालूम होते हो। ले जाओ यह छाता मुफ़्त में"। स्काच साहब विचार में पड़ गये, मामला टेढ़ा था, पर फिर भी गणित ने साथ दिया। झटपट उन्होंने फैसला कर लिया और बोला, "अच्छा तो एक नहीं, दो दे दो" सुननेवाले लोग खिलखिला उठे। पर स्काच को संतोष हो गया कि उन्होंने अपनी जाति की कंजूसी का सिक्का श्रोताओं पर जमा लिया।

इसके विपरीत, एक रोज़ कुछ मारवाड़ी सज्जनों की सभा में एक वक्ता महाशय बड़े गर्म थे और चिल्ला-चिल्लाकर मारवाड़ी निन्दकों की ख़बर लेते थे। किसीने कोष में मारवाड़ी शब्द का अर्थ 'कंजूस' और सूदखोर कर दिया था। यही उनके क्रोध का कारण था। मैंने श्रोताओं से कहा भी कि ऐसी चीज़ों को ज़्यादा महत्व नहीं देना चाहिए; क्योंकि आयरिश (Irish), ग्रीक (Greek), स्पानियार्ड़ (Spaniard), काठियावाड़ी, पठान आदि सभी शब्दों के कुछ-के-कुछ अर्थ बन गये हैं। पर श्रोताओं में तो हास्य-प्रेम की कमी थी; मारवाड़ी शब्द का अर्थ कंजूस कोई कहे, यह तो असह्य था। ड्यूक अफ़ विंडसर जब प्रिन्स आफ़ वेल्स थे तो अपने सहपाठियों के साथ रेल में साधारण

बालकों की भाँति सफ़र करते थे। एक बार गाड़ी का कंडक्टर (conductor) जब उनके डिब्बे के सामने से गुज़रा तो जेब में से एक मटर निकालकर अंगुली से तान कर उन्होंने कंडक्टर के कान पर चुपके से मारी। कंडक्टर ने मुड़कर पूछा, "लड़को, यह मटर किसने मारी?" किसी ने जवाब नहीं दिया तो कंडक्टर ने युवराज (prince) के चेहरे पर शरारत देखकर सोचा—यह लड़का शैतान मालूम होता है और दो चार थप्पड़ जमा दिये। किसी जानकार ने कंडक्टर से कहा कि भावी सम्राट को पीटने के लिए उन्हें बधाई है। शायद कंडक्टर ने इस घटना की अवहेलना की होगी। पर शाहज़ादे ने मज़ाक को मज़ाक में उड़ा दिया। यदि ऐसी घटना भारत में होती, तो क्या होता, इसकी सहज ही कल्पना हो सकती है।

कोई हमसे द्वेष या घृणा करता है तो हमें रोष आ सकता है; क्योंकि चाहे हमारा ही ऐब हो, परन्तु हम अपने ऐब को भूल कर द्वेष करनेवाले पर रोष कर बैठते हैं। इसके विपरीत यदि कोई हमारी प्रशंसा करता है तो हम फूल कर कुप्पा बन जाते हैं। हालाँकि यह सोलह आना सची बात है कि लड़ाई करनेवाला यदि सच्ची भी कहता है तो अतिशयोक्ति करता है, जो झूठ का ही दूसरा नाम है। यदि द्वेषी द्वेष से पीड़ित है तो चापलूस चापलूसी से। दोनों के दोनों निकम्मे हैं। अक़्ल की कसौटी पर कसने से दोनों त्याज्य हैं; फिर क्यों हम एक पर रोष करें और एक पर

प्रेम? लोग धोखा खाते हैं और त्यज्य को ग्राह्य मान बैठते हैं। पर मज़ाक करनेवाला न द्वेषी है, न चापलूस और न पाखंडी। कम से-कम मज़ाक के बारे में यह कहा जा सकता है कि मज़ाकिये का दिल-बहलाव के सिवा और कोई ध्येय नहीं है और दिल-बहलाव कोई बुराई नहीं। यदि आपकी तोंद मोटी है और आप रपटकर चारों खाने चित्त पड़े या बीबी के हाथों से झाड़ू खाते देख लिये जाते हैं और दर्शकों को यह दृश्य हँसी का लगता है तो बेचारों को हँसने दीजिये। इसमें दोनों का भला है। रोग की जड़ चाहे खाँसी हो—यद्यपि मैं तो मानता हूँ कि रोग की जड़ ज़्यादा खाना है—पर 'झगडे की जड़ हँसी बताना यह कोरी मूर्खता है।'

मूसरचंद - बेवक़ूफ़
छिछोरापन - हल्कापन
राड़ - झगड़ा
बंधना-बोरिया - यात्रा का सामान
मुमानियत - मनाही, निषेध
बालपना - लड़कपन
बालस्तावत् क्रीड़ासक्त - बचपन में खेल में मगन रहते
जिवड़ा - जीव, प्राणी
कार्टून - व्यंग चित्र
क़द्रदानी - इज़्ज़त
उखड़ना - गुस्से में आना
सिक्का जमाना - प्रभाव डालना
ख़बर लेना - बुरा-भला कहना
फूलकर कुप्पा बनना - बहुत ज़्यादा प्रसन्न होना, गर्व करना
त्याज्य - छोड़ने लायक
ग्राह्य - ग्रहण करने लायक
मज़ाकिया - हँसोड़, मज़ाक करने-वाला
रपटना - फिसलना

इलाहाबादी अमरूद

शौक़त थानवी

[इसे सरल भाषा में श्री "हुनर" शाहजहाँपुरी ने लिखा है। थानवी साहब उर्दू के मशहूर कहानी लेखक हैं। यह कहानी हास्य का अच्छा नमूना है।]

किसी दोस्त का अपने किसी जिगरी दोस्त के लिए बाहर से कोई सौग़ात लाना असाधारण बात नहीं है; बल्कि दोस्ती इसी का नाम है कि इस प्रकार के दोस्ताना व्यवहार आपस में होते रहें; लेकिन खुदा गवाह है कि जिस वक़्त नुमाइश में मुबीन हमसे मिले और हमको यह सुसंवाद सुनाया कि वे इलाहाबाद गये थे और हमारे लिए वहाँ से अमरूद लाये हैं तो हमारा थोड़ी देर के लिए ऐसा हाल हो गया, मानो हमको हिन्दुस्तान जैसे किसी देश की सल्तनत मिल गयी है। थोड़ी देर तक तो हम आश्चर्य चकित खड़े उनका मुँह देखते रहे। इसके बाद हमने मन में मुबीन की सज्जनता की प्रशंसा करते हुए अपनी इस पूर्व धारणा पर खेद प्रकट किया कि मुबीन अत्यन्त स्वार्थी, कंजूस और मनहूस आदमी है कि अगर सबेरे उठकर उसका नाम ले लिया जाय तो दिन भर खाने को न मिले। आख़िर हमने अपनी आँखों में कृतज्ञता की चमक पैदा करके मुबीन से कहा—"इलाहाबाद के अमरूदों से ज़्यादा तुम्हारी यह मोहब्बत कि तुम मेरे लिए अमरूद लाये, क़ाबिले तारीफ़ है।"

मुबीन ने विनम्र भाव से उत्तर दिया—"लाहौल बिला क़ूवत ! भला यह भी कोई बात है ? मैं तो अपने घर के लिए कुछ अमरूद लाया था। लेहाज़ा, तुम्हारे यहाँ भी बच्चों के लिए भेज दिये हैं। हाँ, इस बात का ज़रा ख़याल रखना कि वे छः किस्म के अलग-अलग हैं। उनमें से कुछ तो यों ही खाने के हैं, कुछ ख़ास कचालू के लिये हैं और कुछ की जेली अच्छी होगी।"

हमने अपना ज्ञान प्रकट करते हुए कहा—"वह तो मैं सब पहचान लूँगा। लेकिन तुमने आख़िर इतनी तकलीफ़ क्यों की ? अगर अमरूद लाने ही थे तो बस एकाध किस्म के ले आये होते। तुमने तो मेरे घर में अमरूदों की एक अच्छी ख़ासी दूकान भेज दी है।"

मुबीन ने फिर तकल्लुफ़ से कहा—"अरे नहीं जी, वह तो बस बच्चों के लिए भेजे हैं।"

मैं उस वक़्त दर-असल कृतज्ञता के भाव से दबा जा रहा था और मेरा जी चाहता था कि मुबीन की इस सच्ची दोस्ती पर क़ुरबान हो जाऊँ। इसी के साथ ही मुझको अफ़सोस भी हो रहा था कि अब तक मैंने मुबीन के बारे में इतनी ग़लत राय क्यों क़ायम की थी। वह हीरा था, पर मैंने सदैव उसको पत्थर समझा। वह मोती था, किन्तु मैं उसको कंकड़ जानता रहा। मैं उस समय मुबीन के इस प्रेम से इतना प्रभावित हुआ था कि अनायास दोस्ती और प्रेम की उस मूर्ति की पूजा करने की इच्छा होती थी। मैंने

मुबीन का हाथ अपने हाथ में लेकर प्रेम से दबाया और उसको गले से लगाकर कहा—"अच्छा मुबीन, यह तो बताओ कि तुमने कभी उस बेहद और बेइन्तहा मोहब्बत का भी ठीक अन्दाज़ा किया है जो मुझको तुम्हारे साथ है ?"

मुबीन ने मुस्कुराते हुए जवाब दिया—"क्या इतनी मोहब्बत के बाद भी अन्दाज़ा करने की ज़रूरत बाक़ी रह जाती है ?"

सच पूछिये तो मुबीन के इस जवाब में मोहब्बत और सच्चाई की एक दुनिया सिमट कर समा गयी थी और यह भी सच है कि मैंने तो आज ही मुबीन की दोस्ती और प्रेम का अनुमान किया था। लेकिन वह सच्चे अर्थों में मेरा मित्र था, नहीं तो स्पष्ट है कि इलाहाबाद से ख़ास तौर पर मेरे लिए अमरूद लाना, बिना इस विशेषता के असम्भव था। मैंने मुबीन के सुन्दर चेहरे पर ग़ौर से नज़र डाली और उसके प्रेमी हृदय की गहराइयों तक अपनी कल्पना को पहुँचाकर आप ही आप झूम गया। मुझको उस समय ऐसा अनुभव हो रहा था, मानों मुबीन का निस्स्वार्थ प्रेम मुझको इस दुनिया से उठाकर किसी ऐसी दुनिया में पहुँचा आया है जहाँ, सिवा प्रेम और मित्रता के और कुछ नहीं। मैं मुबीन को धन्यवाद देना चाहता था। किन्तु असमर्थ था। मैं ख़ूबसूरती के साथ मुबीन को यह बताना चाहता था कि आज से मैं उसका एक तुच्छ सेवक हूँ, किन्तु मुझको शब्द न मिलते थे। मैं मुबीन के उस प्रेमपूर्ण व्यवहार का उत्तर देना चाहता था, किन्तु उस समय

मुझसे यह भी न हो सकता था। मैं चाहता था कि मुबीन को उठाकर आँखों में बिठा लूँ और फिर दिल में रख लूँ, पर यह भी न कर सकता था। अन्त में मैंने बड़ी कठिनाई से मुबीन से केवल इतना कहा "कल सुबह खाना मेरे ही साथ खाना।"

मुबीन राज़ी हो गया। इसलिए कि वह सच्चा दोस्त था और सच्ची दोस्ती में तकल्लुफ़ की गुञ्जाइश नहीं होती, लेकिन मैं वास्तव में तकल्लुफ़ करना चाहता था और जब मुबीन ने मेरी दावत स्वीकार कर ली तो मैंने भी निश्चय कर लिया कि यह दावत सही मानने में मुबीन जैसे सच्चे दोस्त की शान के अनुसार होनी चाहिए। इस अवसर पर कुछ अपने और कुछ मुबीन के दोस्तों को भी आमंत्रित करना ज़रूरी था। अतः घर जाने से पहले ही मैंने उचित समझा कि चौधरी साहब, मिर्ज़ा साहब, मसऊद साहब और महमूद साहब को भी दावत की सूचना दे दूँ, जिसमें कि मुबीन की दिलचस्पी के सारे सामान मौजूद रहें। लेकिन मुबीन के लाये हुए अमरूदों का उपयोग केवल इतना ही तो काफ़ी नहीं था कि ये चार छः आदमी दावत में आकर उन छः प्रकार के विभिन्न अमरूदों को वसूल कर लें, इसलिए कि छः प्रकार के ये विभिन्न अमरूद, ये गिनती के कुछ आदमी नहीं खा सकते थे, मैंने यह निश्चय किया कि कुछ अमरूद तो इस दावत में ख़र्च हो जायँगे और बाकी में से कुछ की जेली बन जायगी। कुछ अमरूद डिप्टी साहब के यहाँ भेज दिये जायँगे और थोड़े अमरूद पंडितजी

के यहाँ भेज देंगे ; क्योंकि वे बेचारे भी बराबर कृपा करते रहते हैं। होली, दीवाली, कोई त्योहार हो, उनके यहाँ से हिस्सा ज़रूर आता है। कुछ अच्छे फल छाँटकर साहब के यहाँ भेज देंगे। वे भी खुश हो जायँगे। बाक़ी ससुराल भेज देंगे ताकि बेग़म साहबा के घरवाले भी तो देखें कि हमारे कैसे-कैसे दोस्त हैं।

हम इसी प्रोग्राम के बनाने में तल्लीन चले जा रहे थे कि ससुराल के ठीक फाटक पर हमारे सालारजंग बहादुर ने "सलाम अलेकुम दूल्हा भाई" कहकर गिरफ़्तार कर लिया और अब हमको लाचार हो घर में भी जाना पड़ा। नहीं तो यही कहा जाता कि इस तरफ़ से होकर निकलते हैं तब भी घर में नहीं आते।

घर में इधर-उधर की बातों के बाद हमने अपनी सब सालियों को न्योता दिया कि कल बहुत बढ़िया इलाहाबादी अमरूद खिलाएँगे। सबने पूछा भी कि कहाँ हाथ मारा ; पर हमने यही कहकर टाल दिया कि मुबीन ने इलाहाबाद में अमरूदों का एक बाग़ खरीदा है, उस बाग़ की पहली फ़सल हमारे यहाँ भेज दी है, उसमें से यहाँ भी भेजे जायँगे।

इस वादे के बाद हमने बड़ी मुश्किल से बिदा होने की आज्ञा ली और ससुराल से चलकर चौधरी साहब के यहाँ जा रहे थे कि रास्ते में नसीम मिल गये और उनको देखते ही हमको याद आया कि कल दावत में इनको भी ज़रूर बुलाना चाहिए, अतएव

उनसे भी कह दिया कि भाई, कल सुबह हमारे ही साथ खाना खाना। उन्होंने इस अचानक के निमन्त्रण का कारण पूछा तो हमने कह दिया कि "दावत तो ख़ैर यों ही-सी है। असल में तुमको इलाहाबाद के अमरूद और जेली वग़ैरह खिलाना है। चौधरी साहब भी होंगे और मिर्ज़ा साहब, मसऊद, महमूद और मुबीन भी होंगे, थोड़ी देर दिलचस्पी रहेगी।

नसीम ने दावत स्वीकार कर ली और हम चौधरी साहब की ओर लपके। इसलिए कि उसी थोड़े से समय में सब मित्रों को सूचना भी देनी थी और फिर घर पहुँचकर जो सबसे कठिन काम था, वह यह था कि जेली तैयार हो जाय, इसलिए कि यही एक झगड़े की चीज़ होती है। और उसको इसी समय तैयार कर लेना ज़्यादा अच्छा था, लेकिन इस जल्दी के होते हुए भी चौधरी साहब के यहाँ पहुँचने से पहले ही साहब का खानसामा मिल गया और हमने उचित समझा कि उसको भी बतला दें कि कल सुबह साहब के लिए कुछ अमरूद भेजेंगे जिसमें कि अगर वह जेली बनाना चाहे तो अभी से इन्तज़ाम कर ले। हमने खानसामा से केवल यही कह दिया कि हमारी ससुराल के बाग़ से अमरूद आये हैं, वह कल साहब के लिए भेजेंगे। तुम खुद उनके सामने पेश करना और तुम्हारे लिए अलग से भेजेंगे, वह तुम रख लेना। खानसामा ने इस सौग़ात का साहब की ओर से बिलकुल साहबी ढंग से धन्यवाद दिया और हम उनसे बिदा होकर चौधरी

साहब के मकान की ओर तेज़ी से बढ़े। चौधरी साहब के मकान से पहले ही मसऊद और महमूद का मकान पड़ता था। अतएव उन लोगों को दावत की सूचना दी और उनके यहाँ से चौधरी साहब के यहाँ पहुँचे। यह भी संयोग की बात थी कि चौधरी साहब के यहाँ डिप्टी साहब भी आये हुए थे। अतएव डिप्टी साहब की उपस्थिति में चौधरी साहब को दावत देना तो उचित न समझा। हाँ, उनके वापस होने के इन्तज़ार में उस समय तक वहाँ बैठना पड़ा, जब तक कि वे बिदा नहीं हुए। डिप्टी साहब जब चौधरी साहब के यहाँ से जाने लगे तो हमने उनसे भी कह दिया कि कल कुछ अमरूद आपकी ख़िदमत में पेश करूँगा, उनको मेहरबानी करके क़बूल कर लीजिएगा और मेरे घर में जेली खास तौर से बनती है, वह भी भेजूँगा। डिप्टी साहब ने खीसें निकालकर बड़ी खुशी के साथ इस सौगात को स्वीकार करने का वादा किया और सिगार चबाते हुए अपनी टमटम पर रवाना हुए तो हमने चौधरी साहब को दावत दी। चौधरी साहब ने अत्यधिक व्यस्त रहने पर भी दावत अस्वीकार नहीं की, बल्कि सेवक की दावत खाकर कृतज्ञ करने का वादा किया।

चौधरी साहब से बिदा होकर हम इलाहाबाद के स्वादिष्ट अमरूदों की सुगंधित और स्वादिष्ट कल्पना में तल्लीन होकर घर की ओर रवाना हुए। इस समय हमारा दिमाग़ अमरूदों की काल्पनिक सुगंध से बसा हुआ था और नज़र के सामने इलाहाबाद

का वही सुन्दर फल था जिसके विषय में महाकवि अकबर ने भी अपने ख़ास ढंग में कहा है:—

"कुछ इलाहाबाद में सामाँ नहीं बहबूद के,
याँ धरा क्या है, सिवा अकबर के और अमरूद के।"

ज़ाहिर है कि अब अकबर तो रहे नहीं। ले-देके इलाहाबाद में सिर्फ़ वही चीज़ रह गयी है जिसको आम तौर से अमरूद कहते हैं और यह सच भी है कि सिर्फ़ अमरूद ही इलाहाबाद की एक ऐसी विशेषता है कि एक लखनऊ नहीं, बल्कि ऐसे-ऐसे हज़ारों लखनऊ, इस अमरूदवाले इलाहाबाद पर न्योछावर किये जा सकते हैं और केवल इसी विशेषता के कारण इस अमरूदों के शहर को यू. पी. ही की नहीं, बल्कि सारे हिन्दुस्तान की राजधानी होना चाहिए था।

हमारी समझ में नहीं आता कि सर हरबर्ट बटलर भूतपूर्व गवर्नर यू. पी. को यह क्या सूझी थी कि वे इस अमरूदों के स्वर्ग को छोड़कर लखनऊ को यू. पी. की राजधानी बनाना चाहते थे। मालूम यह होता है कि अमरूद उनको पसंद नहीं थे, नहीं तो इस कृतघ्नता का और कोई कारण हो ही नहीं सकता। लेकिन अमरूदों की दुआ में भी कम-से-कम इतना असर ज़रूर था कि सर बटलर की गवर्नरी ख़तम हो गयी और इसी हसरत में ख़तम हो गयी कि लखनऊ इलाहाबाद के बजाय यू. पी. की राजधानी बन

जाय, लेकिन इलाहाबाद के अमरूदों के होते हुए लखनऊ को यह सौभाग्य न प्राप्त होना था, न हुआ। इलाहाबाद के अमरूद एक ओर थे और बटलर साहब की लखनऊ-परस्ती एक ओर ! और फिर देख लीजिये कि विजय किसकी हुई। बात असल में यह है कि इलाहाबाद के अमरूद भी तो ग़जब के होते हैं। जिस मकान में एक अमरूद भी पहुँच जाय, बस वहाँ सिर्फ़ इसी की सुगंध छा जाती है। रूप का यह हाल है कि सफ़ेद-सफ़ेद अमरूदों पर लाल रंग की चित्तियाँ ऐसी लगती हैं मानो किसी बरफ़ के मैदान में जगह-जगह आग लगी हुई है या किसी गौरवर्ण स्त्री को रात भर मच्छरों ने सताया है या काश्मीर की घाटी में जगह-जगह मधुशालाएँ खुली हुई हैं। और उनके हरे-हरे पत्तों का आनन्द तो वे ही लोग ले सकते हैं जिनके घरों में बकरियाँ पली हों।

यह तो हुए बाहरी गुण। रह गयीं उनके अन्दर की विशेषताएँ। उसका विवरण काग़ज़ पर या तो ज़बान से लिखना चाहिए या फिर अमरूद से। सारांश यह कि इलाहाबाद के भाग्य में स्वर्ग का यह फल लिखा हुआ था जिसने इलाहाबाद को संसार का स्वर्ग बना दिया।

इन अमरूदों के विषय में, इन्हीं विचारों में तल्लीन घर पहुँचे। दरवाज़े में क़दम रखते ही हमने अपनी नाक के दोनों नथने फड़फड़ाये जिसमें कि अब उस स्वर्गीय सुगन्ध को वास्तव में सूँघ सकें जिसको अब तक केवल कल्पना में सूँघ रहे थे। किन्तु

अमरूद की सुगन्ध के बजाय वही गंध नाक में से होकर दिमाग़ के टुकड़े लड़ाने लगी, जो ड्योढ़ी में बँधी हुई बकरियों के कारण ड्योढ़ी को स्वास्थ्य-विभाग के लिए एक विचारणीय समस्या बनाये हुए थी। इसके अतिरिक्त हमको यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उन बेचारी बकरियों को अब तक अमरूद के स्वादिष्ठ पत्ते नहीं दिये गये। अगर अमरूदों को अब तक सिर्फ़ इसलिए नहीं खर्च किया गया कि हम आकर उनको देख लें तो क्या पत्तों की हिफ़ाज़त भी ज़रूरी थी? पर यह भी ठीक है कि पत्तों के तोड़ देने पर अमरूद पर एक अजीब प्रकार का विधवापन बरसने लगता है। इसलिए अमरूद के सोहाग का दृश्य दिखाने के लिए अभी पत्ते तोड़े न गये होंगे।

हमने यही सोचते हुए घर के भीतर प्रवेश किया और चारों ओर घबरायी हुई नज़र डाली कि किस ओर अमरूदों का डेर लगा है, किन्तु हमको अमरूद कहीं न दिखायी पड़े।

आखिर हमने बेगम से पूछा—"अमरूद?"

जवाब मिला—"अलमारी में हैं।"

हमने आश्चर्य से कहा—क्या कह रही हो, मैं पूछता हूँ वे सब अमरूद कहाँ जो मुबीन ने भेजे हैं?"

"कह तो रही हूँ वह छः अमरूद अलमारी में हैं।"

हमको बेग़म की इस बेवक़ूफ़ी पर ग़ुस्सा आ गया—"छः अमरूद? यानी एक-एक क़िस्म का एक-एक अमरूद अलमारी में रख दिया, और बाक़ी?"

बेग़म ने कहा—"और बाक़ी कैसे? बस!"

हमने ठंडे दिल से ग़ौर करके समझ लिया कि बेचारी बेवक़ूफ़ औरत शायद हमारा मतलब नहीं समझी, इसलिए हमने फिर पूछा—"मुबीन साहब के यहाँ से इलाहाबाद के अमरूद छः क़िस्म के आये हैं—कहो हाँ—उनमें का एक-एक तो तुमने हिफ़ाज़त से अलमारी में रख दिया—कहो हाँ—अब मैं यह पूछता हूँ कि बाक़ी सब कहाँ रक्खे?"

बेगम ने बिगड़कर कहा—"चले वहाँ से पागल बनाने—कह तो दिया कि मुबीन साहब के यहाँ से छः अमरूद आये, वह अलमारी में रक्खे हैं।"

हमने दाँत पीसकर बेगम की तरफ़ देखा। लेकिन फिर ख़ुशामद से कहा—"छः नहीं, बल्कि यह कहो कि छः क़िस्म के अमरूद आये थे।"

बेग़म ने कहा—"मुझको क़िसिम-विसिम तो मालूम नहीं। बस, छः अमरूद आये थे और वह अलमारी में रक्खे हैं।"

अब हमारा दिमाग़ चकराने लगा। हमने इस सवाल को फिर से पूछा—"कुल कितने अमरूद आये?"

बेगम बोली—"तोबा है—छः—छः—छः—बार-बार कह रही हूँ, सिर्फ़ छः।"

"यानी सिर्फ़ छः—छः—छः—तुम्हारा क्या मतलब है?"

बेगम ने मुँह फेरकर कहा—"उहँ—हम नहीं जानते—वाह!"

"मेरा मतलब यह है कि हर छः किसिम के छः—छः—या कुल सिर्फ़ छः?"

बेगम ने कहा—"सिर्फ़ छः, बस।"

अब हमको यह ख़याल आया कि शायद हमारी बेगम साहबा छः से अधिक गिनती ही नहीं जानतीं। इसलिए हमने आख़िरी बार फिर पूछा—"तुम छः किसको कहती हो?"

बेगम ने एक हाथ की पाँचों उँगुलियाँ और दूसरे हाथ का अँगूठा उठाकर कहा "मैं इसको छः कहती हूँ।" बेगम ने फिर हँसकर कहा—"आख़िर यह आज आपको हुआ क्या है?"

हमने कहा—"अच्छा अब मजाक़ तो करो ख़तम। यह बताओ कि सब अमरूद कहाँ हैं?"

अब बेगम ने क़सम खाकर कह दिया कि सिर्फ़ छः अमरूद आये हैं और साथ ही ख़ुद ही अलमारी में से वे छः अमरूद लाकर हमारे सामने रख दिये जो लखनऊ की मंडी में पैसा ढेर के हिसाब से बिकते हैं।

शायद इसके बाद यह कहने की ज़रूरत नहीं कि दूसरे दिन हमको मंडी से इलाहाबाद के अमरूद और बाज़ार से अमरूद की जेली किस मात्रा में लानी पड़ी। हाँ, यह ज़रूर कहेंगे कि लखनऊ में इलाहाबाद के अमरूद सात-आठ आने सेर से कम के मिलते ही नहीं और हमको चाहिए थे, बीस-पचीस सेर। इसलिए इस रक़म और दावत के ख़र्च को मिलाने पर हमारी बधिया बैठी हुई नज़र आती थी। बाकी बचे मुबीन, तो उनके बारे में हमारी वही राय अब भी है जो अमरूद लाने से पहले थी और शायद वही ठीक भी है।

ज़िगरी - दिली
सौग़ात - भेंट
नुमाइश - प्रदर्शिनी
लाहौल बिला क़ूव्रत - आश्चर्य और कुतूहल प्रकट करते समय कहा जाता है।
कचालू - नमकीन सलाद salad
जेली - मुरब्बा jelly
बेइन्तहा - असीम
तक़ल्लुफ़ - शिष्टाचार
खानसामा - नौकर, रसोइया
बहबूद - भलाई, अच्छाई
याँ - यहाँ
दुआ - प्रार्थना
हसरत - अभिलाषा
परस्ती - पूजा
चित्तियाँ - दाग़
ड्योढ़ी - दालान
सोहाग - सौभाग्य
ठंडा दिल - बिना जोश का
तोबा - छिः छिः, राम राम
पैसा ढेर - पैसे में एक ढेर
बधिया बैठना - नुक़्सान होना

नेपाल

श्री शिवपूजन सहाय

[जन्म : १८९३ ई०—स्थान : शाहाबाद (बिहार) ; बाबू शिवपूजनजी हिन्दी गद्य के बनानेवालों में हैं। आप 'मतवाला,' 'जागरण' वग़ैरह पत्रों का संपादन कर ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। इधर आप कई साल तक राजेन्द्र कॉलेज में हिन्दी के प्रोफ़ेसर थे। उसे छोड़कर आप 'हिमालय' के संपादन में लगे रहे। "देहाती दुनिया", "महिला महत्व", "बिहार का बिहार" आदि आपके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। हिन्दी साहित्य के आप बड़े अच्छे पंडित हैं।]

भारत वर्ष की उत्तरीय सीमा नगराज हिमालय से आच्छादित है, उसी के अन्दर नेपाल-राज्य का विस्तार है। नेपाल एक सर्वतंत्र स्वतंत्र हिंदू राज्य है। प्राचीन हिंदू सभ्यता के आदर्श की झलक अभी तक नेपाल में ही देखी जाती है। नेपाल राज्य के उत्तर में तिब्बत है, दक्षिण में उत्तर प्रान्त और बिहार के उत्तरी ज़िले हैं। पूर्व में दार्जिलिंग और सिकिम तथा पश्चिम की ओर अलमोड़ा और नैनीताल हैं। पूर्व से पश्चिम तक, राज्य की लम्बाई ४५० मील है और चौड़ाई १५० से १६० तक है। इसका कुल रक़बा ५४,००० वर्गमील है। जन-संख्या ५६,००,००० है। प्रति वर्गमील लगभग १०० मनुष्यों की बस्ती है। वहाँ गोरखा, नेवार, मागर, किरात और भूटिया आदि जातियाँ बसती हैं। राजधानी में अधिकतर गोरखों और नेवारों की बस्ती है।

यहाँ का आदिम इतिहास किस्से-कहानी के रूप में चला आता है। कहते हैं कि शुरू में कुछ दिन गौड़ (बंगाल) और काञ्ची (कांचीपुरम्) के राजाओं ने यहाँ राज्य किया। तब आये गुजरात के अहीर और पूर्वदेश के किरात। किरातों का सातवाँ राजा महाभारत में पांडवों की ओर से लड़ा और कुरुक्षेत्र ही में मारा गया था। सम्राट् अशोक जब नेपाल गये थे, तब किरातों का राज्य था। किरात-राज्य के बाद सोमवंशी (चन्द्रवंशी) और सूर्यवंशी क्षत्रियों ने नेपाल में राज्य किया। उसी समय भगवान् शंकराचार्य नेपाल गये थे और हिन्दू-धर्म का सुधार किया था। तदुपरान्त नोआकोट में ठाकुरों का राज्य हुआ। सातवीं शताब्दी के मध्यभाग में अंशुवर्मन नामक राजा नेपाल में राज्य करता था। नवीं शताब्दी में नान्यदेव अपने साथ नेवारों को ले आये, जो मंगोल जाति की एक शाखा थे। ग्यारहवीं शताब्दी के अन्त में बंगाल के राजा वियजसेन ने नेपाल को जीत लिया। सन् १३२४ ई० में अयोध्या के हरिसिंहदेव नेपाल की तराई में सिमराँवगढ़ नगर बसाकर बस गये। धीरे-धीरे नेपाल की सारी तराई पर उनका अधिकार हो गया। फिर चौदहवीं शताब्दी के अन्त में वहाँ जयस्थितिमल्ल नामक राजा का राज्य स्थापित हुआ।

इसी समय के लगभग, चित्तौरगढ़-पतन के बाद, मेवाड़ के राणा-वंशी क्षत्रिय यहाँ आये और नेपाल के पश्चिम की ओर 'गोरखा' नामक स्थान में बस गये। उन्हीं के वंशधर पृथ्वीनारायण शाह ने

नेपाल पर दख़ल जमाया। उस समय नेपाल का नाम कान्तिपुर था। यह १७६८ ईसवी की घटना है। पृथ्वीनारायण शाह ही सबसे पहले गोरखा-नरेश हुए। नेवारों के अन्तिम राजा जयप्रकाश मल्ल थे। इन्हीं पृथ्वीनारायण शाह के वंशधर आज तक नेपाल पर शासन करते आ रहे हैं।

नेपाल की राजधानी 'काठमांडू' है। यह 'काष्ठ-मण्डप' का अपभ्रंश है। कहते हैं, राजधानी में पहले एक ही वृक्ष के काष्ठ से एक पूरा मकान तैयार होता था, इसीलिये यह नाम पड़ा। जो हो, काठमांडू नगर पहाड़ की तलहटी पर कंकणाकार पर्वत-शृँखला से घिरा और समुद्रतल से ४,७५० की फुट की ऊँचाई पर बसा है। पहाड़-पहाड़ियों की अधिकता से यहाँ कोई बड़ी नदी नहीं है; फिर भी राजधानी की तिलड़ी करधनी की तरह तीन नदियाँ हैं। तीनों का संगम 'शंखमूक' नाम से प्रसिद्ध है। यह संगम राजधानी से दो मील दूर है। वहाँ का प्राकृतिक दृश्य अतीव सुन्दर—अत्यन्त रमणीय है। राजधानी से तीन मील दूर, कुछ पूर्व की ओर 'मनोहरा' नामक एक सुन्दर नदी है।

राजधानी की बस्ती बहुत घनी है और घनी बस्ती होने के कारण ही नगर के धनी-मानी, अमीर-उमरा और रईस-सरदार बाहर की ओर बसते चले जाते हैं। इस प्रकार इमारतों की संख्या बढ़ने से राजधानी का रक़बा भी बहुत बढ़ता चला जाता है। बड़े बड़े लोगों ने नगर के बाहर जो आलीशान इमारतें बनवायी हैं

और राज्य की ओर से सार्वजनिक हित के लिये अनेक संस्थाओं के जो भव्य भवन बने हैं, उनके बीच 'सिंह दरबार' की अद्भुत शोभा है। सिंह दरबार ही वर्तमान प्रधान-मंत्री का मुख्य निवास स्थान है और यही सदा के लिए नेपाल का गवर्नमेंट-हॉउस होगा। वहीं सम्राट् का महल भी है, जिसे 'नारायणहिट्टी दरबार' कहते हैं। इसके सामने लम्बा-चौड़ा मैदान अजायब-घर और चिड़ियाख़ाना है। पुराना राजमहल राजधानी के अन्दर 'हनुमान ढोका' पर है। नये राजमहल के आसपास राजधानी की बस्ती से बाहर पुस्तकालय, दरबार स्कूल, त्रिभुवनचन्द्र कॉलेज, संस्कृत-पाठशाला, सरकारी अस्पताल, वीर अस्पताल, श्रीचन्द्र दातव्य औषधालय और सैनिक अस्पताल आदि की शानदार इमारतें हैं। उक्त संस्कृत-पाठशाला के सामने ही 'टुण्डी-खेला' नामक सुविस्तृत मैदान है, जहाँ सैनिकों की क़वायद हुआ करती है।

राजधानी के बीचों बीच एक अत्यन्त विशाल घड़ियालस्तम्भ (घंटाघर) है। वह ठीक 'रानी-पोखरी' के सामने पड़ता है और कॉलेज की इमारतों के पास ही है। उसके दूसरी ओर 'टुण्डी खेल' मैदान के सामने लगातार क़तार में अस्पताल और फ़ौजी छावनियों की बैरकें हैं। उसी पंक्ति में, कुछ दक्षिण की ओर, एक अति विशाल दस मंजिला धौरहरा है, जिसे आज से लगभग १०० वर्ष पूर्व, भीमसेनथापा नामक तत्कालीन राजमंत्री ने बनवाया था। वाग्मती-नदी पशुपतिनाथ के मंदिर की ओर पड़ती है।

उसके दक्षिण तट पर अंगरेज़ों और भारतवासियों के लिए अतिथि-शालाएँ बनी हैं।

नगर-भर में हिन्दू-देवताओं के स्थान और मन्दिर हैं। सब मन्दिरों और देवस्थानों में पशुपतिनाथ और गुह्येश्वरी भगवती, जो वाग्मती-नदी के किनारे हैं, अधिक प्रतिष्ठित तथा पूज्य हैं। वाग्मती-नदी नगर से लगभग डेढ़ कोस दूर है। उसका जल बड़ा स्वच्छ, मधुर और शीतल है। राजधानी में तो थोड़ी थोड़ी दूर पर ही देवालय मिलते हैं। काशी की तरह वहाँ भी असंख्य मन्दिर हैं।

तराइयों में यत्र-तत्र बहुत-से बौद्ध-मन्दिर और स्तूप भी हैं जिनमें शम्भुनाथ और बौद्धनाथ विशेष प्रसिद्ध हैं। पशुपतिनाथ का मन्दिर काँचन के कलस से मंडित है। मन्दिर के अन्दर कोई प्रवेश नहीं कर पाता। बाहर से झाँकी-दर्शन होते हैं। मूर्ति बड़ी दिव्य है। पूजा षोड़शोपचार-विधि से होती है। राग, भोग और सेवाराधन बिलकुल राजसी ठाट का होता है। बड़े भारी विजयघंट, मन्दिर के मण्डप में लटक रहे हैं। पीतल का विशाल नंदी बड़ा सुन्दर है। सम्राट्, सम्राज्ञी, प्रधान मन्त्री, प्रधान सेनापति तथा अन्य बड़े बड़े ओहदेदार और राजघराने की स्त्रियाँ प्रायः दर्शनार्थ चौकड़ी या मोटर पर आया करती हैं। मन्दिर के पास पुलिस का प्रबन्ध अत्यन्त शिष्ट, सभ्य और शान्तिपूर्ण रहता है। शिवरात्रि के समय भारतर्ष के असंख्य

यात्री वहाँ जाते हैं। सम्राट् या पशुपतिनाथ के दर्शनार्थियों में किसी साधारण-से-साधारण यात्री को भी, तनिक कष्ट नहीं होने पाता।

लोगों का यह मिथ्या भ्रम है कि नेपाल में बाहरी कोई जाने नहीं पाता। राजधानी में कपड़े के व्यवसायी मारवाड़ी बहुत हैं। पंजाबी भी बहुत हैं, जो मिठाइयों की दूकानें करते हैं। वहाँ के नेवार जातिवाले भी अच्छे धनाढ्य व्यापारी हैं। बिहारी बढ़ई भी बहुत हैं, मुसलमान दूकानदार भी कम नहीं हैं। कई पुश्तों से मुसलमान वहाँ बड़ी शान्ति एवं संतोष के साथ रह रहे हैं। उनकी दो मसजिदें भी राजधानी में हैं। कितने ही मैथिल तथा बंगाली देवोत्तर एवं ब्रह्मोत्तर-सम्पत्तियों के अधिकारी हैं। कुछ समय हुआ—प्रधान मन्त्री ने एक प्रकार की सम्पत्ति को, जो धनी पुजारियों और माल-मस्त महन्तों के पेट में जाती थी, अनाथालय और कुष्ठाश्रम तथा दरिद्रालय के लिए दे दिया। शिवरात्रि के समय लाखों दर्शनार्थी पशुपतिनाथ-धाम की यात्रा करते हैं। उनके लिए राज्य की ओर से ख़ास तौर से अनेक प्रकार की सुविधाएँ कर दी गयी हैं। कोई रुकावट नहीं है। सिर्फ़ नेपाल की सीमा पर एक पासपोर्ट (प्रवेश-पत्र) लेना पडता है जिसके लिए किसी तरह की फ़ीस नहीं ली जाती।

वर्तमान नेपाल की उन्नति का सूत्रपात गत शताब्दी में हुआ है। उस समय प्रधान मन्त्री थे महाराजा बीर शमशेर।

राज्य के समस्त विभागों की अच्छी तरह जाँच-पड़ताल और छान-बीन करके उनमें समयानुकूल सुधार किये गये हैं। युग और देश की परिस्थिति के अनुसार पुराने कानून नये साँचे में ढाल दिये हैं। कितनी धाराएँ तो बिलकुल पलट ही दी गयी हैं। और भी बहुत-से अदालती सुधार हुए हैं। एक हाईकोर्ट की भी स्थापना हुई है। एक कौंसिल भी बनी है जिसके मेंबर कुछ तो राजघराने के लोग हैं, कुछ छोटे-मोटे राजा रईस हैं और कुछ सरकारी अफ़सर भी हैं। अपील के लिए जो प्रिवी-कौंसिल है, उसे 'निकसारी अड्डा' कहते हैं।

सेना का शिक्षण और संचालन अंगरेज़ी तरीक़े पर होता है। वर्दी भी अब नये फ़ैशन की कर दी गयी है। सैनिकों की वेतन-वृद्धि भी हुई है। एक फ़ौजी स्कूल खोला गया है। सन् १९०८ में ४५ हज़ार पैदल सेना और ढाई हज़ार तोपें थीं। इसके अलावा सुरक्षित (रिज़र्व) सेना भी बहुत थी। पर तब से आज तक सेना में बहुत वृद्धि हुई है। पाँच वर्ष तक चाहे जो सैनिक शिक्षा प्राप्त कर सकता है; पर सेना में भर्ती होना उसके लिए अनिवार्य नहीं होता। इससे नेपाली युवक युद्ध-कुशल होते हैं; राष्ट्र का बल भी बढ़ता है।

सेना-विभाग की तरह शिक्षा-विभाग की भी बड़ी अच्छी दशा है—क्रमशः उन्नति ही होती जा रही है। पहले-पहल सन् १८८० ईसवी में अंगरेज़ी हाईस्कूल स्थापित हुआ था। उसका

कलकत्ता विश्वविद्यालय से सम्बन्ध था। सन् १९१२ ईसवी में त्रिभुवनचंद्र-कॉलेज खुला। इसमें बी० ए० तक की पढ़ाई होती है। आज से तीस वर्ष पूर्व जहाँ एक ग्रेजुएट था वहाँ अब कोड़ियों हैं; कई नेपाली छात्रों ने कलकत्ता विश्वविद्यालय से अँगरेज़ी, अर्थ-शास्त्र, इतिहास और संस्कृत आदि में एम० ए० पास किया है और कई पास हुए हैं कलकत्ता मेडिकल कालेज से एम. बी. बी. एस. परीक्षा में। कुछ छात्र रुरकी और शिवपुर से इंजिनीयर होकर निकले हैं। नेपाल सरकार के खर्च से आज भी हिन्दुस्तान के भिन्न-भिन्न भागों में अनेक नेपाली छात्र क़ानून, विज्ञान, कला, कृषि, आयुर्वेद, वाणिज्य आदि की शिक्षा पा रहे हैं। प्रधान मन्त्री ने कई छात्रों को जापान भेजा था। वे बड़े कुशल इंजिनीयर, भूगर्भ-तत्त्ववेत्ता, कृषि-विशारद और शस्त्र-यन्त्री होकर आये हैं।

यह सब कुछ होते हुए भी, खेद है, वहाँ कोई कन्या-विद्यालय नहीं है। किन्तु फिर भी उच्च और मध्यम श्रेणी के लोगों की लड़कियाँ निरक्षर नहीं हैं। शायद ही सौ में एक अपढ़ मिले तो मिले। उच्च-जाति की लड़कियों में धड़ल्ले से अँगरेज़ी-शिक्षा का प्रचार होता जा रहा है। साथ ही साथ उन्हें संगीत और कला-कौशल की भी शिक्षा मिलती जाती है।

राज्य के भिन्न-भिन्न भागों में बहुत-सी निःशुल्क प्रारंभिक पाठशालाएँ भी खुल गयी हैं। इससे साधारण जनता में यथेष्ट

शिक्षा-प्रचार हो रहा है। इतना ही नहीं, नेपाल की समस्त शिक्षा-संस्थाएँ निःशुल्क हैं। यहाँ पर इतना और कहने का लोभ-संवरण करना कठिन है कि 'भूमि-कर' अथवा 'मादक-वस्तु-कर' के सिवा यहाँ और कोई भी 'कर' नहीं है। इनकम-टैक्स का तो पता ही नहीं !

लगभग दस वर्ष हुए, 'गोरखाली भाषा की' उन्नति के लिए एक 'गोरखा-भाषा-प्रकाशिनी-समिति' नाम की सभा बनी थीं। उसके द्वारा छात्रों के हितार्थ भिन्न-भिन्न विषयों की सैकड़ों पुस्तकें रचीं, और अनुवाद की गयी हैं।

म्युनिसिपैलिटी भी बड़ी मुस्तैदी से काम कर रही है। राजधानी में ज़मीन के अन्दर नालियाँ नहीं थीं। सड़कें भी पुराने ढंग की थीं। अब नालियाँ और सड़कें बहुत ही सुन्दर बनी हैं। सड़कों पर गिट्टियाँ जमाने के लिए एंजिन मँगा लिये गये हैं। भारत के 'रक्सौल' (चंपारन) रेलवे-स्टेशन (ओ. टी. रेलवे) से नेपाल-राज्य के अन्दर एक पक्की सड़क पीटी गयी है। मोटर लारी दौड़ाने की भी व्यवस्था है। पहाड़ों को खोदकर रास्ते निकालने के लिए इंगलैंड और भारत से बड़े अच्छे अच्छे इंजिनीयर बुलाये गये। राजधानी से १८ मील दूर 'भीमफेड़ी' तक तो पहले ही से मोटर चल रही है। वर्तमान प्रधान मन्त्री के समय में राज्य-भर में काठ और लोहे के अनेक पुल

बने हैं। साथ ही यात्रियों की सुविधा के लिये मार्ग में अनेक धर्मशालाएँ भी बनी हैं।

सन् १८८२ में राजधानी में पानी का नल लगा था। उसे 'बीर-धारा' कहते हैं। यह स्वर्गीय प्रधान मंत्री की कीर्ति है। उसके बाद भीमफेड़ी, भिच्छाकर भटगाँव और पाटन में भी जलकल बनी हैं। इन जलकलों के बनने से प्रजा का बड़ा उपकार हुआ है। जब पानी का नल न था, तब पहाड़ का पानी लग जाने से असंख्य मनुष्य अनेक रोगों के शिकार होकर मौत के मुँह में चले जाते थे।

राजधानी से सात मील दूर फरपिंग में बिजलीघर भी बन गया हैं। अमेरिका और इंगलैंड के इंजिनीयरों ने इसे बनाया है। अब नेपाली इंजिनीयर चला रहे हैं। राजधानी की गली-गली में रात-भर बिजली की रोशनी जगमगाती है। पहाड़ी दृश्य के साथ-साथ इस विद्युत्प्रकाश का मनोरम दृश्य बड़ा ही सुहावना प्रतीत होता है।

वर्तमान युग की सभ्यता के समग्र प्रसादों से परिपूर्ण होकर नेपाल राज्य इस समय सर्वथा दर्शनीय बन रहा है। अब तो झूला-रेल भी बन रही है।

पहले सूखा चमड़ा राज्य से बाहर बिदेशों में चला जाता था। अब एक भारतीय ने चमड़े की फैक्टरी खोली है। बिजली के प्रवेश से ही यह सुविधा प्राप्त हुई है। नाज कूटने, छाँटने, दलने और पीसने की मशीनें अब बिजली से ही चलती हैं।

बिजली भवानी की इन विभूतियों के साथ-साथ टेलिफ़ोन भी राजधानी से वीरगंज तक लग गया है। उपर्युक्त 'रक्सौल' के पास ही वीरगंज है। यह भारत की सीमा के पास नेपाल की दक्षिणी सीमा पर एक समृद्धिशाली नगर हैं। यहाँ नेपाल सरकार का अस्पताल, जेल, कचहरी, डाकख़ाना थाना आदि हैं। यह व्यापार का एक प्रधान केंद्र भी है। यहीं से नेपाल-राज्य में प्रवेश करने के लिए परवाना (आज्ञापत्र) मिलता है। कुली और तांगे-तंजाम आदि सवारियाँ भी मिलती हैं।

कृषि की उन्नति के लिए एक बहुत बड़ी नहर निकाली जा रही है जिसमें कई लाख रुपये खर्च हो चुके हैं। बहुत-सी खानें भी हाल में मिली हैं। कोयले की तो एक बहुत बड़ी खान मिली है। आशा है नेपाल राज्य की व्यापारिक उन्नति में वह बड़ा काम देगी। आजकल बन्दूकों और गोली-बारूदों के कारखाने केवल नेपाली इजिनीयरों की देख-रेख में बड़े मज़े से चल रहे हैं।

नेपाल की प्रचलित भाषा 'गोरखाली' नागरी अक्षरों में ही लिखी जाती है। अक्षरों की बनावट क़रीब हिन्दी से मिलती जुलती है। चाँदी का 'मोहर' नामक नेपाली सिक्का हमारे यहाँ के सवा छः आने के बराबर होता है। सोने के सिक्के अशर्फ़ी कहलाते हैं। ताँबे के पैसे भी चलते हैं। भारत के सिक्के भी सर्वत्र प्रचलित हैं।

भारत में नेपाल सम्राट का बड़ा सम्मान है। अभी हाल ही में नेपाल सरकार के प्रधान मंत्री दिल्ली आये थे। उन्होंने भारत सरकार से एक संधि की है जिसके अनुसार भारत और नेपाल के बीच स्थाई मित्रता की भावना स्थापित हुई है।

नगराज - पर्वतराज
आदिम - प्रारंभिक
तराई - पहाड़ के नीचे की ज़मीन
तलहटी - तराई
कंकणाकार - वलयाकार, गोलाकार
तिलड़ि - तीन लड़ (सूत्र) वाले
करधनी - कमरबन्द belt
कतार - लाइन
बैरक - barracks
धौरहारा - मीनार, बुर्ज़
कांचन - सोना
साँचा - mould
कोड़ी - बीस का समूह
गिट्टियाँ - पत्थर के टुकड़े

कवि साम्राट् रवीन्द्रनाथ ठाकुर

प्रो० सद्गुरुशरण अवस्थी, एम. ए.

[जन्म सन् १९०१ ई०—स्थान कानपूर। आपकी शिक्षा पहले कानपूर फिर आगरा में हुई। एम० ए० पास करने के बाद आप क्राइस्ट चर्च कालेज, कानपूर में काम करने लगे। अच्छे साहित्यक, आलोचक और कहानीकार हैं। पुरानी कथा-वस्तु को लेकर नये दृष्टिकोण से आपने कई एकांकी लिखे हैं जो माधुरी; सरस्वती आदि प्रसिद्ध साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं। विचार-विमर्श, गद्य गाथा, मुद्रिका, बलि-वामन, कैकेई, शंबूक, त्रिशंकु आदि आपकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। आपने कवि रवीन्द्रनाथ की जीवनी बड़े ही सुन्दर ढंग से सरल भाषा में लिखी है।]

कवि साम्राट् रवीन्द्रनाथ ठाकुर का जन्म महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के घर सन् १९६१ ई० में कलकत्ता नगर में हुआ था। देवेन्द्रनाथजी की तेजस्विनी आत्मिक शक्तियों से बङ्गाल का धार्मिक समाज भली प्रकार आलोकित था, बालक रवीन्द्र के आत्मिक विकास में महर्षिजी की आत्मा का उज्ज्वल प्रभाव बड़ी गम्भीरता से पड़ा। बचपन में ही मातृ-वियोग इन्हें सहना पड़ा। अतः कवि के भविष्य-निर्माण में मातृ-प्रेम से वञ्चित जीवन का विशेष प्रभाव पड़ा। बाह्य-जगत का बालकाल में आभास मिला। बालक रवीन्द्रनाथ की स्वाभाविक दृष्टि ही सृष्टि-सौन्दर्य के निरीक्षण की ओर थी।

इनका बचपन जिन परिस्थितियों में व्यतीत हुआ उन्हें जानने से आश्चर्य होता है। इन के साथ सदैव नौकर रहते थे।

क़ैदी की भाँति ये बिना आज्ञा के घर से बाहर नहीं निकल पाते थे। इतना होने पर भी हमारे चरित्रनायक की कल्पना-शक्ति विचित्र थी, कौतुक की भावना से उत्पन्न हुई जिज्ञासा उनके चित्त को चंचल किया करती थी।

विद्यार्थी-जीवन में स्कूल जाना इन्हें असह्य था। जिस निर्दयता से शिक्षक इन्हें कड़ी धूप में खड़े रहने का दण्ड देते थे, उससे रवीन्द्रजी के चित्त में स्कूल के प्रति भय उत्पन्न हो गया था। ये अन्य विद्यार्थियों के पीछे चुपचाप बैठे रहा करते, मास्टर के किसी भी प्रश्न का उत्तर नहीं देते। किंतु जब वर्ष के अन्त में परीक्षा का अवसर आया तो आप सर्वोत्कृष्ट सफल हुए। इसपर उन मास्टरों को बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने रवीन्द्र बाबू पर अविश्वास प्रकट करते हुए पुनः इनकी परीक्षा ली, किन्तु इस बार भी रवीन्द्र बाबू पहले की भाँति और बालकों से आगे रहे। स्कूल के अतिरिक्त घर पर भी इन्हें बहुत कुछ पढ़ना पड़ता था। जानवरों के वृत्तांत से लेकर बड़े-बड़े काव्य, संगीत, अँग्रेज़ी तथा धार्मिक ग्रंथों का मनन करना पड़ता था। यही नहीं, आप प्रातःकाल लँगोट बाँधकर अखाड़े में भी जाते थे, दौड़ होती थी, ड्राइङ्ग तथा जमनास्टिक भी करना पड़ता था! शाम को साधारणतः ६ बजे तक कहीं छुट्टी मिलती थी।

स्कूल तथा कॉलेज की पढ़ाई में विशेष उन्नति न करने पर भी घर पर रवीन्द्र बाबू की शिक्षा का बड़ा अच्छा प्रबन्ध था।

सबसे बड़ी सुविधा यह थी कि उनके घर गुणी लोग प्रायः सदा ही आते-जाते थे। महर्षि देवेन्द्रनाथ उनका बड़ा आदर करते थे बड़े-बड़े पण्डित जैसे राजनारायण बसु, अक्षयकुमार दत्त आदि तो उनके घर के-से हो गये थे। इस प्रकार कवि, गायक, दार्शनिक, धार्मिक और साहित्यिक पुरुषों के समागम का रवीन्द्र बाबू के चरित्र-गठन पर गहरा प्रभाव पड़ा।

रवीन्द्रनाथ केवल सात-आठ वर्ष की अवस्था से कविता करने लगे थे। इन्होंने एक स्थान पर कहा है "ज्योति-प्रकाश नाम के मेरे एक भाञ्जे हैं; एक दिन वे मुझे अपने घर ले जाकर कहने लगे कि तुम्हें पद्य लिखना पड़ेगा। पद्य कहते किसे हैं, यह अभी तक मैंने पुस्तकों में ही पढ़ा था, मुझे इस बात की कल्पना तक करने का साहस न था कि कोशिश करने से पद्य-रचना स्वयम् भी हो सकती है। इसके बाद जब एक बार कुछ शब्दों को जोड़ देने से पद्य तैयार हो गया तो मेरे आश्चर्य की सीमा न रही।" इस प्रकार इनका कविता-काल आरम्भ हुआ।

लिखने के बाद जब तक कविता दूसरे को सुनायी न जाय, चित्त को शांति नहीं मिलती। इस विषय में रवीन्द्र बाबू भी उदासीन न थे। कोई न मिलने पर वे अपने बड़े भाइयों को ही अपनी कविता सुनाते और उनसे प्रोत्साहन पाते। बड़ों में से बहुत से लोग तो इनकी कविता सुनकर हँस पड़ते थे। और जब इस

प्रकार एक बार भी कोई हँस पड़ता तो रवीन्द्र बाबू फिर उसकी ओर देखते भी न थे।

रवीन्द्रनाथ बाबू को अपने नौकरों के शासन का बड़ा कटु अनुभव मिला। एक स्थान पर रवीन्द्र बाबू ने स्वयम् लिखा है—"मेरा श्यामा नामक एक नौकर इतना बदमाश था कि वह कौतुक के लिए मेरे कमरे के अन्दर चाक से एक रेखा खींच दिया करता था; मुझसे यह कह दिया करता था—खबरदार जो इस रेखा के बाहर निकले। मैं उसकी ताड़ना को शुभेच्छु समझकर अथवा यों कहिये, डर के कारण रेखा के अन्दर ही बद्ध रहता।"

जिस समय रवीन्द्र बाबू का उपनयन हो गया था, इसी समय उनके पिता ने बुलाकर पूछा—"क्या तुम मेरे साथ हिमालय पर चलना चाहते हो?" यह बात सुन रवीन्द्रनाथ फूले न समाये। बड़े हर्ष से बोल उठे "चाहता हूँ।"

हिमालय जाते समय ये ज़री के काम की मखमल की एक पोशाक पहनकर रेल पर सवार हुए। इसके पहिले इन्होंने रेलवे-स्टेशन देखा न था, अतः रेल के विषय में बाल-रवीन्द्र के मन में अनेक प्रकार की भयप्रद कल्पनायें उठना स्वाभाविक ही था, परंतु जब उसपर आसानी से सवार होकर वन-पर्वतों की सैर करते हुए मार्ग तै करने पड़े तो इन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। बोल्डर नामक ग्राम उनकी इस यात्रा का निर्दिष्ट स्थान था। वहाँ पहुँचने पर इन्हें बड़ा आनन्द मिला। इन्होंने स्वयम् लिखा है कि सबसे बड़े

आनन्द की बात मुझे नौकरों के शासन से मुक्ति-प्राप्ति थी। यहाँ पर रवीन्द्र बाबू को घूमने की पर्याप्त स्वतन्त्रता थी। प्रायः अकेले ही घूमने के कारण उनकी कल्पना प्रगाढ़ होती गयी और आप घूमने के साथ-साथ एक नारियल के पेड़ के नीचे बैठकर कविता लिखने का भी अभ्यास करते रहे। यद्यपि इनके खेलने का कोई कड़ा बन्धन न था, फिर भी पढ़ाई बन्द न हुई थी, पिताजी स्वयम् इन्हें प्रातः काल जगा दिया करते, सबसे पहिले पिता-पुत्र एक साथ उपासना करते। फिर दोनों व्यक्ति घूमने के लिए निकल जाते। घूम-फिरकर एक घंटे अंग्रेज़ी की पढ़ाई होती। इसके बाद भोजनोपरान्त फिर पढ़ने का समय आता। इस प्रकार रवीन्द्र बाबू की इस प्रथम यात्रा के सुखद दिन बीतने लगे। अन्त में एक दिन पिता ने एक आदमी के साथ इन्हें कलकत्ता भेज दिया।

यात्रा से लौटने पर रवीन्द्र बाबू अधिक स्वच्छन्दता से घर पर रहने लगे। नौकरों का शासन स्वयम् उनके ही मानसिक उद्योग से उतना कड़ा न रह गया। अब तो मित्रों तथा बड़े भाइयों के सहायोग से आपने बाल-सभा नाम की एक सोसाइटी खोली जिसमें बालकों की समयानुकूल-शिक्षा अथवा अन्य व्यावहारिक बातों पर विवाद होता था। एक बार अन्य साथियों से मिलकर आपने दियासलाई बनाने का उद्योग किया जिसमें आप पूर्णतः सफल हुए। केवल आर्थिक दृष्टि से वह प्रयास अधिक लाभप्रद न दीख पड़ने के कारण आपका परिश्रम व्यवहार-रूप में परिणत न हो सका।

रवीन्द्रनाथ के बड़े भाई सत्येन्द्रनाथ ने भारतीयों में सर्वप्रथम सिविल सर्विस परीक्षा पास की थी और वे अहमदाबाद में जज थे। इन्हीं के साथ रवीन्द्र बाबू ने १७ वर्ष की अवस्था में विलायत-यात्रा की। इतनी अल्प आयु में विलायत जाने से इन्हें बड़ा लाभ हुआ। अभी तक वे अपने ग्राम से ही अभिज्ञ थे या जब कभी एक-दो यात्राएँ की थीं। इस यात्रा से हृदय ऐसा विस्तृत हो गया कि स्वदेशी या विदेशी कोई भी अच्छी वस्तु इनके हृदय पर अङ्कित हो जाती थी। इटली पहुँचकर रवीन्द्र बाबू ने पहली बार यह अनुभव किया कि कल्पना और सत्य का प्रायः कभी मेल नहीं होता। इटली इन्हें उतना नवीन और चित्ताकर्षक नहीं मालूम हुई जैसा कि इन्होंने पहिले सोच रखा था।

पेरिस इन्हें बड़ा सुहावना प्रतीत हुआ। वहाँ के होटलों की प्रशंसा में आपने बहुत कुछ लिखा है। अस्तु, विलायत (इंग्लैंड) पहुँचने पर ये पहले बहुत निराश हुए। इनकी यह धारणा थी कि इंग्लैंड का समाज बड़ा कवितामय होगा। किन्तु लोगों का व्यस्त भाव देखकर आप बहुत ही हताश हुए। वहाँ की भीड़-भाड़ और आडम्बर रवीन्द्रनाथ को बड़ा विचित्र ज्ञात हुआ।

रवीन्द्र बाबू अंग्रेज़ी चाल-ढाल पसन्द नहीं करते। विलायत जाकर यह अँग्रेज़ नहीं बने।

लोगों के परिहास की परवाह न करते हुए वे वहाँ पर देशी ही पोशाक पहना करते थे। एक स्थान पर आप लिखते हैं कि "जब मैं कुरता पहनकर सड़क पर से निकलता तो बालकवृन्द आपस में यह कहने लगते थे 'Jack, look at the blacks'। लोग मेरी ओर इस ध्यान से देखने लगते कि उनको यह ज्ञान भी नहीं रहता कि पीछे से गाड़ी आ रही है।"

विलायत पहुँचकर रवीन्द्रनाथ एक स्कूल में भर्ती हो गये। वहाँ भी लड़के इनके साथ हँसी करते थे, किन्तु उनकी हँसी में दुर्व्यवहार का लेश भी न था। कभी-कभी वे इनकी जेब में शायद विदेशी समझकर सेव नारङ्गी डाल दिया करते थे। वहाँ के मास्टर भी इन्हें खूब जी लगाकर पढ़ाते थे, इसलिए वे भी इन्हें बहुत पसन्द थे। विलायत के साधारण आदमियों के सम्बंध में भी रवीन्द्र बाबू की बड़ी अच्छी धारणा थी। उन आदमियों की ईमानदारी ने इन्हें बहुत ही प्रभावान्वित किया। विलायत-प्रवास के समय ये डाक्टर स्काट नामक एक सज्जन के अतिथि थे। उनके लिए रवीन्द्र बाबू ने लिखा है कि "श्रीमती स्काट मुझे अपने लड़के ही के समान चाहती थीं और उनकी लड़कियाँ मेरे साथ जैसा बर्ताव करती थीं वैसा अपने सम्बन्धियों से भी सम्भव नहीं।"

एक वर्ष बाद रवीन्द्रनाथ विलायत से लौटे।

विलायत से लौटने पर उनके चित्त में एक प्रकार का उन्माद रहने लगा। ये कविता और सङ्गीत में निमग्न रहने लगे। गाने का सुर रात-दिन इनके कण्ठ में लगा रहा। इनके गाने पर मुग्ध होकर एक बार इनके पिता ने इन्हें पाँच सौ रुपये का पुरस्कार दिया था। विलायत में भी इनकी कविता और गाना बन्द नहीं था। गाने के लिए वहाँ के भी सभ्य समाज में इनका आदर था। विलायती सङ्गीत में भी इनका अच्छा अधिकार था। देश लौटने पर इन्होंने देशी और विलायती दोनों स्वरों को मिलाकर एक गीतिनाटक लिखा। उसका नाम है "वाल्मीकि-प्रतिभा" और घर में ही इन्होंने इसका अभिनय किया। रवीन्द्र बाबू एक कुशल अभिनेता भी थे। उस समय इनकी अवस्था २२ वर्ष की थी, तभी इनका विवाह हुआ।

विवाहोपरान्त इनका जीवन बड़ा सुखद था, मिलन के स्वर अलापना ही तब से इनके जीवन की साधना हो गयी। इसी प्रकार इनके जीवन के तीस वर्ष व्यतीत हो गये। रवीन्द्रनाथ के साहित्यिक जीवन का तीसरा विभाग उनकी ३३ साल की अवस्था से आरम्भ होता है। आपके पूज्य पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ ने इस समय आपसे अपनी ज़मींदारी की व्यवस्था करने को कहा। रवीन्द्र बाबू को लाचार होकर देहात में रहने की आज्ञा स्वीकार करनी पड़ी। पर यहाँ रहकर आपको जो लाभ हुआ वह भी अवर्णनीय है। आपको यहाँ कृषकों के जीवन का परिचय हुआ

और मानवी अन्तःकरण के सुख-दुख, अभिलाषा और विकारों के विश्व-व्यापी तत्वों का ज्ञान हुआ। किन्तु, यह सब होने पर भी आप शोक-सन्तप्त और रुग्ण रहते थे। इन्हें अपनी प्रिय पत्नी का आकस्मिक वियोग सहन करना पड़ा और उसके कुछ महीनों के पश्चात् ही इनकी कन्या भी क्षय रोग को प्राप्त हो गयी और इस घटना के कुछ काल बाद इनका बालक भी अनन्त में लीन हो गया। चालीस वर्ष की उम्र में आप भी बहुत क्षीण-कलेवर हो गये, अतः आप सियालदा (गाँव) से लौट आये। लौटने के बाद आप बहुत विक्षिप्त से रहने लगे और हृदय में एकान्तवास की इच्छा उत्पन्न हो गयी। यही मन्तव्य शान्ति-निकेतन के निर्माण का कारण हुआ।

इसी जीवन में आपने गीताञ्जलि की रचना की। इनके इस समय के काव्यों में मानवी जीवन की महत्वाकांक्षाओं का बड़ा ही सुन्दर चित्र है। इन्होंने देहातियों के जीवन के अध्ययन-स्वरूप उनकी आत्मा को, उनकी सरल प्रकृति को, उनके सुख-दुखों को और उनके मनोभावों को पहचान लिया और उनके सम्बन्ध में प्रकृति और सादे जीवन को निहारकर ही रवीन्द्र बाबू के हृदय में देश की सेवा के लिए महत्वाकांक्षाएँ उठने लगी थीं, उनके हृदय में पूर्ण-रूप से प्रकृति-प्रेम का साम्राज्य छा गया था और इसीलिए आपने शान्तिनिकेतन की पाठशाला खोलकर देश-सेवा का क्रियात्मक कार्य किया। इस विद्यालय के आस-पास का वातावरण कितना

पवित्र और दिव्य है, इसके आदर्श क्या हैं और शिक्षा-पद्धति कैसी है, इसका ज्ञान देखकर ही समझा जा सकता है।

शान्तिनिकेतन की स्थापना करके रवीन्द्र बाबू ने यह सिद्ध कर दिया कि अर्वाचीन तथा प्राचीन शिक्षा-प्रणाली का मिश्रण करके शिक्षा सङ्गीतमय बनायी जा सकती है। आपका यह विद्यालय पुराने समय के आश्रमों के ढङ्ग का है। यहाँ खुली हवा में पृथ्वी पर नारियल के वृक्षों के नीचे कतारें लगती हैं। विद्यालय की स्थापना के पूर्व जो शान्तिनिकेतन एकान्त चिन्तन का स्थान था और जहाँ पर महर्षि देवेन्द्रनाथ के अभ्यागत संन्यासी लोग प्रवास करते थे उसी स्थान पर रवीन्द्र बाबू सन १९०१ ई० में केवल ३ विद्यार्थियों को लेकर स्वयम् विद्याभ्यास कराने लगे। दो वर्ष पश्चात् वहाँ १८ विद्यार्थी और चौथे वर्ष में वहाँ ६० विद्यार्थी आश्रम की शिक्षा पाने लगे। इस समय वहाँ पर २०० से अधिक विद्यार्थी रहते और शिक्षा पाते हैं।

शान्तिनिकेतन रवीन्द्रनाथ का पुण्य तीर्थ है। इसी की उन्नति में आप तन-मन से लगे रहते थे। आजकल यहाँ समस्त विश्व का एक मेला-सा लगा रहता है। यहाँ का विद्यालय जो किसी समय एक छोटी-सी पाठशाला से आरम्भ हुआ था, आज एक विश्व-विद्यालय के नाम से सम्बोधित किया जाता है। रवीन्द्रनाथ के इस विश्वविद्यालय का नाम 'विश्व-भारती' है।

रवीन्द्रनाथ की अवस्था जब ५० वर्ष की हुई तो बोलपुर स्कूल के विद्यार्थियों और अध्यापकों ने मिलकर उनका जन्मोत्सव मनाया। कलकत्ते के बङ्गालियों ने भी इनकी ५० वर्ष की युवक-मोहिनी विभूतियों से मुग्ध होकर टॉउन हाल में आपका स्वागत किया। इनकी प्रतिभा केवल बङ्गाल तक ही सीमित न रही, वह चारों ओर समुद्र पार भी पहुँची।

मई सन् १९१२ में जब इन्होंने अपनी कुल कविताओं का अंग्रेज़ी संस्करण प्रकाशित किया, तो आप इंग्लैण्ड पुनः गये। गीताञ्जलि का अंग्रेज़ी अनुवाद बँगला की अपेक्षा कम अलंकृत होने पर भी वहाँ की जनता उस पुस्तक पर मुग्ध थी। भारतीय कवि के सामने यूरोप के कवियों ने मस्तक नीचे कर लिया और रवीन्द्रनाथ को संसार भर के कवियों की सभा में श्रेष्ठ स्थान मिला। रवीन्द्रनाथ का गौरव इससे और भी बढ़ा। भारत लौटने के पूर्व आपको संसार का सबसे बड़ा पुरस्कार "Nobel prize" मिला। इस पुरस्कार से रवीन्द्र बाबू का ही नहीं, बल्कि समस्त भारत का मुख उज्ज्वल हो गया। इसके बाद कलकत्ता विश्वविद्यालय ने भी आपको डी. लिट्. अर्थात् साहित्याचार्य की उपाधि से विभूषित किया।

१९२० ई० में जब आप फिर विदेश गये तो जहाँ कहीं गीताञ्जलि का नाम तक पहुँचा था, वहाँ आपकी बड़ी आवभगत हुई। फ्रान्स और डेनमार्क में लाखों व्यक्तियों की सभाओं में आपका स्वागत और व्याख्यान हुआ। आप जब चीन तथा

जापान गये तो वहाँ आप भारत के सूर्य के नाम से पुकारे गये। चीन के सम्राट ने आपको ४०० वर्ष का पुराना एक चित्र भेंट किया। इस प्रकार आपने अपनी भव्य कविताओं, नवीन कल्पनाओं से प्रसूत मानवी भावनाओं के अलंकृत, विश्लेषण-युक्त कहानियों तथा गायन और वक्तृताओं से विश्व भर का आदर ग्रहण किया।

कविसम्राट् रवीन्द्र ने अपने काव्य तथा कहानियों में भारत को जो सन्देश सुनाया है, वह उच्च और दिव्य है। उन्होंने अपने सन्देश में भारतवर्ष के प्राचीन आदर्शों का चित्र खींचा है। उन्होंने दिखला दिया है कि पाश्चात्य सभ्यता जड़ सभ्यता है, उसमें आत्म-तत्व का समावेश नहीं किया गया है। इसी से उसमें आध्यात्मिक भाव का अभाव है। वह बाह्य उन्नति तक ही सीमित है, उसका तत्व स्वार्थ है। उदाहरण के लिए गत यूरोपीय महायुद्ध साक्षी है। भारत की आर्य सभ्यता अत्यन्त उदार है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' उसका प्रधान तत्व है। इसी कारण रवीन्द्रनाथ का सन्देश सारी मनुष्य जाति के लिए है, किसी राष्ट्र विशेष की सीमा तक परिमित नहीं। वह अखिल संसार और मानव जाति के हित के लिए है।

वंचित - रहित
आभास - प्रकाश, झांकी
निरीक्षण - अध्ययन, ग़ौर से देखना
जिज्ञासा - जानने की इच्छा
गुणी - गुणवान, विद्वान
दार्शनिक - फ़िलासफ़र
समागम - सत्संग
रुग्ण - रोगी
महत्वाकांक्षा - महान अभिलाषाएँ
आवभगत - स्वागत
प्रसूत होना - पैदा होना

पसीने की पुत्री

श्री रामचन्द्र तिवारी

[आप दिल्ली के रहनेवाले नौजवान कहानीकार हैं। आपसे अभी साहित्य को बहुत उम्मीद है। इस कहानी में आपने परिश्रम की श्रेष्ठता को बहुत अच्छे ढंग से बताया है। कहानी को पौराणिक कहानी के ढंग से लिखकर भी आपने उसमें एकदम नवीन धारणा व भावना का समर्थन किया है।]

जब उन्होंने होश संभाला तो ऐसा लगा था कि स्वयं उनके पिता भी उनकी माता के विषय में भूल चुके थे। कभी कभी ये दोनों भाई देखते कि पिता अकस्मात ध्यान-मग्न हो गये हैं। इसका उनपर विशेष प्रभाव न पड़ता था। वे वर्तमान को सब कुछ समझनेवाले थे। भूत का उनके समीप कोई मूल्य न था; और पिता थे, जिनका प्राण भूत में था। वर्तमान केवल उसकी बिखरी छाया-मात्र थी।

कुछ दिनों में पिता न रहे। जो कुछ अवशेष रहा, उसमें भी संतान ने पिता का चिन्ह कहीं न पाया। हाँ, जब कभी उन्हें अपने नामों का स्मरण आता तो पिता का ध्यान आ जाता था; क्योंकि सर्वप्रथम उन्होंने पिता के ही मुख से सुना था कि वे दुर्जन और सज्जन हैं।

प्रसिद्ध था कि दुर्जन और सज्जन एक साथ उत्पन्न हुए थे।

घटनाएँ कुछ इस प्रकार हो गयी थीं कि उन दोनों अलभ्य भाइयों में ज्येष्ठत्व और लघुत्व का निश्चयात्मक निर्णय करनेवाला कोई साक्षी विद्यमान न था। जिस दाई ने जनन-क्रिया में योग दिया था वह वृद्धा थी और स्मरण शक्ति को तेज करनेवाली समस्त औषधियों का उपयोग करने पर भी इस विषय में एक सम्मति न दे पाती थी। सज्जन से जब वे प्रसन्न होतीं तो उसे ज्येष्ठत्व प्रदान करतीं, दुर्जन के प्रति किसी कारणवश जब उनकी सहानुभूति उमड़ती तो वे उसके शरीर में ज्येष्ठत्व के लक्षण स्पष्ट देखने लगती थीं।

इस प्रकार कोई निर्णय न होने पर भी वे दोनों भाई निरंतर जीवन पथ पर बढ़ते चले गये। दोनों साथ रहते और समाज में मान-प्रतिष्ठा सहित चौपाल में बैठने के लिए जो कार्य आवश्यक थे उन सबका सम्पादन करते।

वे एक दूसरे से असन्तुष्ट थे, यहाँ तक कि समय पर यह असंतोष घृणा बनकर दुर्गन्धि देने लगता था। पर, क्योंकि वे अपने अकेले पिता के पुत्र थे और शेष संसार के विरोध के बीच अपना अस्तित्व बनाये रखना चाहते थे। इसलिए वे इस प्रकार खड़े थे जैसे अमर बेल बबूल के काँटों की चिंता न कर उससे चिपटी रहती है।

*　　　*　　　*

बरसात का पानी खेत में रोक रखने के लिए एक छोटी तलैया खोदने की बात थी, जो कई सप्ताह—वर्षा से पहिले से चल रही थी।

सज्जन ने सम्मुख रक्खी रिक्त सोमरस की प्याली की ओर देखा; एक अंगडाई ली, अपने सुगठित शरीर पर हाथ फेरा और फिर जैसे अपने अस्तित्व को किसी अपरिमित अज्ञात शक्ति के हाथ सौंपते हुए बोला।

"भाई दुर्जन, उठो। वर्षा आ रही है, तलैया—।"

दुर्जन ने विद्रोह से भर कर कहा "रहने भी दो। क्या करना है? मैं नहीं जाता।"

"तो भाई....?" सज्जन ने अनुरोध किया।

"मैं व्यर्थ अपने शरीर को कष्ट नहीं दूँगा, जल चाहे बह जावे।"

"तो फिर खाओगे क्या?"

"देखा जायगा।"

"दुर्जन!"

"जाओ, मुझे तुमसे उपदेश नहीं सुनना है। मैं बड़ा हूँ।"

"हाँ, बड़े तुम सही, पर तलैया....।"

"तुम जाओ, देखो आग्रह न करो।"

"क्यों?"

"जाओगे नहीं?"

"करोगे क्या?"

"मैं?" दुर्जन के नेत्र आग्नेय हो गये। चीखा—

"जाते हो या नहीं। मैं फावड़े से तुम्हारा सिर काट कर रख दूँगा।"

"सभी लोग....।"

"सभी लोग जो करते हैं, वह मैं क्यों करूँ? तुम.... ।"

सज्जन को लगा कि दुर्जन अपने पर अधिकार खो बैठा है। उसने एक दृष्टि उसके नेत्रों को बचाते हुए डाली, अपनी चादर उठायी; कंधे पर फावड़ा रक्खा और चौपाल से नीचे उतर गया।

"दुर्जन नहीं चलता तो न सही। न वर्षा उसके लिए रुकेगी और न पानी ही अपने खेत से वह जाना बन्द करेगा।"

सज्जन खेत में पहुँचा। अन्न-पूर्णा धरती से चरण स्पर्श करते ही उसके शरीर में एक कम्प दौड़ गया। आत्मा फूल उठी और पार्थिव अस्तित्व अत्यन्त विशाल शून्य की भाँति फैल चला।"

उसे लगा कि इसी भूमि से वह उत्पन्न हुआ है। इसी में गल मिल जायगा। अनुभव हुआ कि इस प्रकार गलने में कितना आनन्द है। शरीर की सीमा को पीछे छोड़ उस भूमि खण्ड पर आत्मा का विस्तार कितना मन-मोहक है। उसने स्पष्ट देखा कि उसकी आत्मा शरीर से निकल कर मिट्टी को स्पर्श करती, जल की चादर की भाँति, खेत पर फैल रही है। उसका शरीर पुलका। मन उमँगा। चादर उतार कर एक ओर मिट्टी के ढेर पर फेंक दी और चारों ओर दृष्टि फेंककर फावड़ा भूमि पर रखा। दोनों हाथ मले और फावड़ा जैसे लौह पकड़ में पड़ गया।

तलैया का खुदना प्रारम्भ हो गया। सूखी भुरभुरी

मिट्टी भूमि में से उठकर फावड़े पर आती। एक बार झूलती और फिर बालक की भाँति खिलखिलाती-सी एक ओर कूदकर बिखर जाती।

परिश्रम से सज्जन की पेशियाँ हिलीं। वायु के सरल स्वस्थ झोंकों ने उसपर पंखा झला और सज्जन अपने को काम में बिलकुल भूल गया।

सज्जन अपने काम में मग्न था। अचानक उसे लगा कि कोई व्यक्ति उस ओर अत्यंत दूर आ रहा है। उसने दृष्टि ऊँची की। पर्वत श्रेणी की पृष्ठ-भूमि पर उसे मेघ जटित आकाश के नीचे एक मानव मूर्ति अपनी ओर आती दिखी।

वायु की एक लहर उसके केशों से खेल गयी। पसीने के कण सिहरे और एक शीतलता उसके प्राणों में व्याप गयी। उसने दृष्टि उस ओर से हटा ली। उँगलियाँ फावड़े की मूठ पर कस गयीं। फावड़ा ऊपर उठा, सज्जन की पेशियों का भार लेकर नीचे गिरा और फस्स से भूमि में धँस गया। पृथ्वी ने बिछुड़ी सन्तान के लिए जैसे हृदय खोल दिया।

सज्जन ने आहट पाकर गर्दन ऊँची की। देखा—दुर्जन खड़ा उसकी ओर देख रहा है। फावड़ा उसके बायें हाथ में झूल रहा है।

दुर्जन ने अपने नेत्र सज्जन से बचाते हुए कहा, "सोचा चलूँ, देखूँ, अकेला मर रहा होगा, नहीं तो मैं कभी नहीं आता। आये दिन वही खेत, पानी, अन्न? मेरा तो जी ऊब गया।"

सज्जन ने दबी दृष्टि से दुर्जन की ओर देखा। उसका हृदय पुलका। पर कुछ बोला नहीं। फावड़ा बल-पूर्वक पकड़ा और भूमि पर दे मारा।

दुर्जन ने भी निकट ही खोदना प्रारम्भ किया।

*   *   *   *

काया के जितने रोग हैं, उनमें असंतोष सबसे विकट है। जब यह भूत की निराशा और भविष्य के अंधकार से उत्पन्न होता है तो जीवन को चारों ओर से दबाकर एक बिन्दु पर स्थित करने का बहाना ले, उसे प्रतिक्षण आधार से विचलित करता रहता है।

यह रोग जैसा भीषण व्यापक और गहरा है औषधि भी वैसे ही व्यापक और गहरी है। वह मानव-शरीर के भीतर जाने की आवश्यकता नहीं रखती। शरीर से बाहर निकलने पर ही वह रोग को शीतल करती हैं। वह औषधि है पसीना।

पसीने की झलक आते ही दुर्जन का असंतोष तिरोहित हो चला। उसके हाथ सज्जन से भी अधिक बलपूर्वक चलने लगे। शीघ्र ही वह सज्जन के बराबर भूमि खोद ले गया।

वे थकते, सुस्ताते और पुनः खोदने लगते। दोनों तलैया खोदते जा रहे थे। परिश्रम अपने शिखर पर था। दोनों के शरीर से पसीने की धारा बह रही थी। अस्तित्व के ये मोती शरीर के छिद्रों में से रिस-रिस कर एकत्रित होते और वहाँ से जैसे भूमि को

देखते ही उन्हें पुराना सम्बन्ध स्मरण आ जाता और वे वेग से पृथ्वी की ओर टूट पड़ते। पृथ्वी उनके स्पर्श से द्रवित हो चली।

फावड़े चलते रहे और पसीने की धारा बहती रही। परिश्रम ऊँचा चढ़ता गया। कुछ समय में ही उस तलैया में इतना पसीना एकत्रित हो गया कि मिट्टी दिखायी पड़नी बन्द हो गयी।

पर फावड़े न रुके। वे उठे और गिरे। पसीना बहा। बूँद बूँद रिसकर धाराओं में बहा। मिट्टी के ऊपर उसकी गहराई बढ़ गयी।

जब पसीना बढ़कर टखनों से ऊपर तक आ गया तो सज्जन ने कहा, "तनिक देर सुस्ता लें।"

समर्थन में दुर्जन ने हाथ का फावड़ा फेंक दिया। और दोनों सूर्य की चिलचिलाती धूप में अपनी अपनी चादर सीस पर रखकर सुस्ताने लगे।

*　　*　　*　　*

दुर्जन ने कहा, "मान लिया कि हमने तलैया खोद ली। उसमें पानी भर गया और उससे अन्न कुछ अधिक उत्पन्न हो गया, तो इसका क्या होगा? जीवन की जटिलता, जो मुझे व्यथित करती है, इससे किस प्रकार सुलझ जायगी?"

सज्जन ने कहा "जो जटिलता है रहा करे। हमारे दुख का कारण वह क्यों बने?"

"जब जीना है तो उसके प्रश्नों से किसी प्रकार भागा जा सकता है? सोचे बिना कैसे रहा जा सता है?"

मैं सोचने-विचारने का विरोध कब करता हूँ? वह वो जब उसमें दुख की भावना उत्पन्न होती....।

तभी उन्होंने सुना कि उस तलैया में पसीना हलकोर उठा है।

दोनों ने कान खड़े किये। एक आश्चर्य दोनों के मुख-मण्डल पर छा गया।

दुर्जन ने कहा, "इतनी शीघ्र मछली उत्पन्न नहीं हो सकती।"

"सर्प भी उधर दिखायी नहीं पड़ा।"

"कुछ होगा।"

"मिट्टी गिरी होगी।"

तभी दूसरा हलकोर सुना। जैसे कोई लचकदार वस्तु पानी में घूमी हो।

सज्जन ने उठकर तलैया में झाँका पाया कि लाल कमल-कलिका के समान कोई वस्तु एकाएक तुरन्त जल में अदृश्य हो गयी है। वह जैसे वहीं बंधकर पुनर्दर्शन की प्रतीक्षा करने लगा। उसकी उत्सुकता ने दुर्जन को आकर्षित किया।

उन्होंने देखा कि पानी के भीतर कोई वस्तु हिल रही है। दुर्जन ने हाथ से उसे पकड़ निकालने की उत्कण्ठा दिखायी।

सज्जन ने रोका, "कोई विषैला जीव न हो?"

"होने भी दे।"

"नहीं, फिर....।"

वह सुन्दर वस्तु पुनः ऊपर नहीं दिखायी दी। भाई के रोकने पर भी दुर्जन न माना। उसने पसीने के कुण्ड में हाथ डाल दिया। और दूसरे क्षण ही एक गिलगिला पदार्थ बाहर निकाल लिया।

उस पदार्थ को देख दोनों अत्यंत चकित हुए। एक क्षण अपने नयनों पर अविश्वास करने के पश्चात् उन्होंने अनुभव किया कि वास्तव में दुर्जन के हाथों में जो पदार्थ है वह अत्यंत रूपवती शिशु, कन्या है। इसी के कमल-कलिका सदृश पद दिखाई पड़े थे।

"सज्जन ने कहा "अब?"

दुर्जन ने कहा "अब?"

"ले चलो, इसे पालेंगे।"

"जीवन में कुछ रंग आ जायेगा।"

"काम को ध्येय मिल जायेगा।"

"दिल बहलेगा।"

* * *

कन्या जैसी सुन्दरी थी वैसे ही शीलगुण निधान थी। वह दोनों भाइयों की पुत्री थी और दोनों का स्नेह उसे प्राप्त था।

एक दिन ज्योतिषी पधारे। दोनों ने अत्यंत उत्साह से कन्या को उनके चरणों में उपस्थित किया। ज्योतिषी कन्या के रूप को देख ठगे से रह गये।

दुर्जन ने पूछा "गुरुजी, कन्या के लक्षण....?"

ज्योतिषी जागे। कन्या से प्रभावित होते हुए बोले।

"बेटा सज्जन! ऐसी कन्या मैंने आज तक नहीं देखी।"

"गुरुजी!"

"हाँ। यह अत्यंत भाग्यशालिनी है। जहाँ यह है अभाव नहीं होगा।"

दोनों चुप।

"और जिसके साथ उसका विवाह हो वह तो?"

"क्या गुरुजी?"

"दुर्जन भाई! कन्या इतने सौभाग्य-चिन्हों से अभिषिक्त है कि मैं स्वयं उन सबके अर्थ नहीं जानता।"

भाइयों ने ज्योतिषी का सत्कार किया। उन्होंने कन्या को बारम्बार देखा, बोले—"इतने शुभ लक्षण तो मैंने किसी पुस्तक में भी एकत्रित नहीं देखे।"

पूछा—"गुरुजी, इसका नाम?"

ज्योतिषी ने मीन मेष किया। नयन मूँदे, शीश खुजलाया, और फिर गंभीर स्वर में कहा "लक्ष्मी।"

नाम सबको भाया। सभी उसे लक्ष्मी कहकर पुकारने

लगे। लक्ष्मी पिता के लाड़-चाव में धीरे धीरे चन्द्रमा की भाँति बढ़ने लगी।

ज्योतिषी ने जो कहा उसमें पिताओं में, विशेषतः दुर्जन में, सोचने की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई। उसने सोचा। बारम्बार घुमा-फिराकर कितनी ही बार सोचा। परन्तु बारम्बार अपने को एक ही निश्चय पर पाया और अपने इस विचार-जाल से इतना विवश हो गया कि उसने एक दिन सज्जन को पकड़कर एकांत में बैठा लिया।

"मैं पिछले दस वर्षों से जिस विचार-माला में उलझता सुलझता रहा हूँ, वह तुम्हें बताना चाहता हूँ। तुम असहमत होगे तो होओ, पर उसे प्रकट करने की चेष्टा न करना। नहीं तो....।"

सज्जन सँभला—"बात क्या है? शान्त होकर बोलो।"

"पिछले दस वर्षों से मैं अपने को बोलने से रोकता आया हूँ, परन्तु अब....।"

"उत्तेजना जितनी कम होगी उतना ही....।"

"चुप रहो।"

सज्जन शांत।

"मैं अत्यंत अरूढ़िवादी बात कहने जा रहा हूँ। तुम्हें बुरी लगेगी। पर मुझे उसकी चिंता नहीं है।"

"बैठो तो पहले।"

"चुप रहो। अपनी सम्मति अपने पास रखो।"

सज्जन चुप।

"लक्ष्मी जब से हमारे पसीने से उत्पन्न हुई है हमारा ऐश्वर्य बढ़ा है। फ़सल अच्छी होती है।"

"हाँ।"

"पहले से अच्छी....।"

"फिर?"

"फिर क्या? सुने जाओ। जो नहीं समझते उन्हें बोलने का अधिकार ....।"

"कहो, क्रुद्ध न हो।"

"मैंने सुना है कि तुम उसका विवाह करने जा रहे हो?"

"क्या बिट्टो का विवाह नहीं करोगे? लोग क्या कहेंगे?"

"लोग क्या कहेंगे, इसकी चिंता नहीं है। लोग जो ठीक समझते हैं, करते हैं! जो मैं ठीक समझूँगा, करूँगा।"

"क्या?"

"मैंने कह दिया लक्ष्मी का विवाह नहीं होगा। मैंने ज्योतिषी से पूछ लिया है। विवाह में उसे देकर क्या पुनः दरिद्र बनना है?"

"तो फिर?"

ज्योतिषी ने बताया है कि कन्या का समस्त सौभाग्य उसके पति की सम्पत्ति होता है।"

"हूँ।"

"हूँ, तुम्हारा सिर! क्या समझे?"

" परन्तु भाई।"

" भाई के नाना, लक्ष्मी से विवाह मैं स्वयं करूँगा, समझे ?"

" तुम ?"

" हाँ, मैं।"

" पिता होकर ?"

" चुप रहो।"

" परंतु मैं।"

" तुम यदि सहमत हो तो घर में रह सकते हो। नहीं तो तुम्हारा मार्ग उस ओर है। जानते हो, मैं बड़ा हूँ ?"

सज्जन ने सुना और स्तब्ध होकर बैठ गया। पिता सौभाग्य को बाँध रखने के लिए कन्या से विवाह करे, यह उसे कुछ ठीक-सा नहीं जँचा। पर इससे कन्या के विवाह की समस्या तीव्रता से उसके सम्मुख उपस्थित हो गयी।

उसकी लक्ष्मी सुन्दरी, सौभाग्यवती है, उसे वर भी उसके अनुरूप चाहिए।

बोला, " कुछ सोचने का समय न दोगे ?"

" सोचने का समय? सोचो, खूब सोचते रहो। तुम सोचते ही रहो, यही मेरे लिए, संसार के लिए, उत्तम है।"

* * *

दुर्जन को लगा कि समस्त सौभाग्य के प्याले को एक ही

साथ पी जाये। सोने का अंडा देनेवाले पक्षी का पेट चीर उसके स्वर्ण-भण्डार को एक ही साथ प्राप्त कर ले।

उसने निश्चय कर लिया तो संसार की कोई शक्ति उसके पथ से विचलित नहीं कर सकती। पुकारा "सज्जन !"

"क्या ?"

"आज खेत नहीं ?"

"अभी गया।"

सज्जन चादर कंधे पर डाल खेत की ओर चल दिया। दुर्जन ने अपनी बुद्धि की बड़ी विजय मानी। गर्व से घर में चारों ओर देखा। लक्ष्मी के अकेली अपनी कोठरी के द्वार पर बैठे रहने की कल्पना की।

बस, अब वह लक्ष्मी से विवाह करेगा। एक बार विवाह हो जाने के पश्चात्....। फिर, फिर तो वह अजेय है, लक्ष्मी उसके चरण दबायेगी। सौभाग्य उसके लिए सोमरस निकालकर लायगा और सज्जन ! इसके पश्चात् वह दास बनकर ही इस घर में रह सकेगा।

उसने मूँछों पर ताव दिया। दाढ़ी पर हाथ फेरा। मुस्काया, और फिर सौभाग्य के चारों ओर लोहे की जंजीर डाल देने के लिए गम्भीर गति से आगे बढ़ा। कुछ क्षण और ! और वह संसार को अपने चरणों तले दे रखेगा।

लक्ष्मी ने पिता को अपनी ओर आते देखा। मुस्कान उसके मुख पर आ गयी। बोली, "पिताजी, प्रणाम।"

दुर्जन ने उत्तर नहीं दिया।

सोचा, "सज्जन नहीं जानता कि लक्ष्मी मुझे चाहती है।"

बोला "लक्ष्मी।"

"जी।"

"तुम्हें संसार अच्छा लगता है?"

"बहुत!"

"यहाँ कौन-सी वस्तु सबसे अच्छी लगती है?"

"मुझे वैसे तो यह पर्वत और नदी सभी अच्छे लगते हैं; पर इन आकाश के तारों में एक आकर्षण है। सदा टिमटिमाते रहेंगे। कभी एकाकार होकर जल नहीं उठेंगे, जिससे संसार में रात्रि का आना बन्द हो जाये।"

"अरे तारे नहीं।"

"संसार में तुझे कौन अच्छा लगता है?"

"मुझे आप और काका अच्छे..........!"

"काका भी? नहीं, यह नहीं............!"

"तब?"

"मैं अच्छा लगता हूँ कि काका?"

"कभी आप अच्छे लगते हैं, कभी वह।"

"अब?"

"आप अच्छे लगते हैं।"

"इधर आ।"

लक्ष्मी मुस्काई। उठकर दुर्जन के निकट गयी। चीते की सी लाघवता से उसने लक्ष्मी को अपने बाहुपाश में कस लिया और अपनी कठोर दाढ़ी उसके निकट लाकर बोला—

"लक्ष्मी, आओ, हम और तुम विवाह कर लें।"

लक्ष्मी तो भौंचक्की सी रह गयी थी, भयभीत हो गयी, थर-थर काँपने लगी। जी में आया कि चिल्लाये।

पर नारी बुद्धि ने काम दिया। उसने अपने को संयत किया। बोली, "मैं तो आप ही की हूँ। आपको छोड़कर कहीं जानेवाली नहीं। आइये, कोठरी में बैठें।"

दुर्जन ने सोचा था कि लक्ष्मी इस प्रकार स्वीकृति न देगी। वह आवश्यकतानुसार बल-प्रयोग करने को तैयार था। अब शांत हो गया। बोला "चलो।"

लक्ष्मी दुर्जन के हाथ में हाथ डालकर कोठरी के द्वार तक ले गयी।

"आप विराजिये। मैं दो प्याली सोमरस ले आऊँ?"

दुर्जन ने सफल प्रसन्नता से मस्त मौन-सम्मति दी।

लक्ष्मी दूसरे आँगन में गयी। प्याले खटखटाये और फिर चुपके से द्वार के बाहर निकल गयी। सांकल चढ़ायी और खेत की ओर चली।

सज्जन ने देखा कि लक्ष्मी भागी जा रही है। आगे बढ़ कर पूछा, "क्या बात है, बिट्टो! कुशल तो हो?"

लक्ष्मी की सांस वेग से चल रही थी। वह उत्तर शीघ्र न दे पायी। सज्जन ने प्रश्न दुहराया। परन्तु अभी लक्ष्मी की साँस फूल रही थी।

"क्या? घर में आग तो ....?"

"नहीं।" लक्ष्मी ने शीघ्रता से कहा।

"तो!"

"दुर्जन काका........। मैं अब उस घर में नहीं जाऊँगी।"

"बिट्टो।"

"हाँ काका!"

"क्यों?"

"नहीं, मैं...........।"

सज्जन ने देखा कि कुछ है जो लक्ष्मी कहना नहीं चाहती। दुर्जन की बात स्मरण आयी। पूछा—

"दुर्जन ने ....?"

"हाँ, काका। मैं अब जा रही हूँ।"

"कहाँ?"

"निश्चय नहीं है।"

"अकेली?"

"तुम साथ चलोगे?"

"क्यों नहीं? मैं अपनी बिट्टो को अकेली नहीं जाने दूँगा। दुर्जन के साथ मेरा निर्वाह नहीं होगा।"

"तो चलो!"

पिता और पुत्री दोनों सघन वन में जाकर अदृश्य हो गये।

दुर्जन जब प्रतीक्षा करते करते थक गया, तो उठकर मकान में लक्ष्मी को खोजने लगा। इसी खोज में उसे ज्ञात हुआ कि द्वार बाहर से बन्द है और वह अपने ही घर में बन्दी है।

सज्जन और लक्ष्मी चलते चलते एक अत्यंत विशाल वट वृक्ष के निकट पहुँचे। वृक्ष जितना विशाल था, उतना ही भयानक था। उन्होंने देखा कि वृक्ष की जटाओं से विशालकाय सर्प लटके हुए हैं और अपनी लम्बी जिह्वाएँ निकाल कर वायु में से जीवन चाट रहे हैं।

सर्पों की यह क्रीड़ा देखकर सज्जन मस्त हो गया। सोचा, विपत्ति अकेली नहीं आती।

तभी एक ओर से गंभीर शब्द सुनायी पड़ा। "कौन है? इधर आओ।"

सज्जन ने स्वर की ओर डग बढ़ाया। देखा कि एक केशों का समूह है उसी में से शब्द आ रहा है।

प्रणाम के पश्चात् कहा, "मैं सज्जन हूँ। मेरे साथ पुत्री लक्ष्मी है।"

"क्यों आये?"

सज्जन ने सोचा, ये महात्मा हैं, इनसे अपनी विपदा अवश्य कहनी चाहिये। बोला, "महात्मन्, पुत्री के लिए वर खोजने—"

"इस कन्या के लिए वर ?"

"जी ।"

"ठहरो ।"

"जी ।"

"देखो, दक्षिण की ओर जाओ । वहाँ दूध का सागर मिलेगा । उसके बीच सर्पों की नाव बनाकर नारायण नामक एक चिर-युवा निवास करता है । वही तुम्हारी कन्या के उपयुक्त वर है ।"

जो आज्ञा ।"

*　　　*　　　*　　　*

दूध के सिंधु तट पर खड़े होकर पिता पुत्री ने सर्पों की नाव को बीच में तैरते देखा ।

सज्जन ने पुकारा । "नारायण !"

लक्ष्मी के हृदय ने पुकारा, "नारायण !"

नाव में लेटे नारायण ने सुना । उससे नाव को सुखतट की ओर घुमा दिया ।

तट पर आकर पिता-पुत्री को उसने देखा । पूछा, "तुम कौन हो, यहाँ कैसे आये ?"

"महाराज, मैं अपनी इस पुत्री के लिए योग्य वर की खोज में यहाँ तक आया हूँ । महात्मा ने आपका पता........।"

" हूँ। तो यह तुम्हारी पुत्री है ?"

"जी।"

नारायण ने लक्ष्मी को सिर से पैर तक देखा। " परन्तु मैंने विवाह न करने का व्रत लिया है। पता नहीं ये महात्मा मेरे विवाह में इतनी रुचि........।"

" महाराज।"

" क्या ?"

" इस कन्या का कोई रक्षक नहीं है, आपकी शरण—।"

सज्जन नारायण के चरणों पर गिर पड़ा।

" जान पड़ता है कि महात्मा मेरा विवाह कराये बिना न रहेंगे। अच्छा।"

" महाराज।"

" सुनो। मैंने आजीवन ब्रह्मचारी रहने का व्रत लिया है। यदि तुम्हारी कन्या काम-भावना त्याग कर रक्षा प्राप्त करने के लिए मेरे पास रहना चाहे तो मैं महात्मा की इच्छा पूर्ण करने को तैयार हूँ।"

" बिट्टो।"

लक्ष्मी ने नारायण की ओर देखा।

" काका, मुझे इनकी शर्त स्वीकार है।"

सज्जन ने नारायण के चरण स्पर्श किये ।

" पर " नारायण ने कहा ।

" कन्या-दान लेने आपको मेरे घर पधारना होगा ।"

" अच्छा ।"

* * *

जिस समय नारायण, लक्ष्मी और सज्जन घर पहुँचे तो कई दिन हो चुके थे । दुर्जन को अपना बंधन इतना दुखदायी हुआ कि वह खाना-पीना भूल किवाड़ खटखटाता रहा और अंत में वहीं बेसुध होकर गिर पड़ा ।

जब सज्जन ने किवाड़ खोला तो नारायण की दृष्टि दुर्जन पर पड़ी ।

" कौन है यह ?" उसने पूछा ।

" भाई दुर्जन ।"

वे उसे उठाकर भीतर ले गये ।

पंडित आये । कन्यादान की तैयारी हो गयी । पर दुर्जन को होश न आया । बेसुध अवस्था में ही सज्जन ने उससे कन्यादान कराया ।

जब अंतिम रीति समाप्त हो चुकी तो दुर्ज्जन ने सुधि प्राप्त की ।

सज्जन ने कहा, " भाई, यह अपने जामाता नारायण हैं । इनके चरणों में प्रणाम करो ।"

दुर्जन ने आग्नेय दृष्टि से लक्ष्मी, नारायण और सज्जन की ओर देखा।

"छल से मेरी कन्या से विवाह करनेवाला यह धूर्त कौन है?"

"भाई, अपने दुर्वचनों के लिए तुम क्षमा माँगो। ये नारायण हैं। अपने पूज्य हैं। लक्ष्मी के पति हैं।"

"चुप रहो, यह तुम दुष्टों....।"

नारायण को जैसे कोई कार्य स्मरण हो आया। वे उठकर खड़े हो गये। लक्ष्मी को हाथ का सहारा देकर उठाया।

बोले—"आप लोगों की इस भेंट के लिए मैं कृतज्ञ हूँ। आपकी कन्या मेरे निकट सुख से रहेगी। वह संसार में सर्वत्र विचरण करने को स्वतंत्र होगी। जो अपनी कन्या को पहचानेंगे उनके लिए वह सुख शान्ति की सृष्टि करेगी और जो उसे घेर कर उसपर बलात्कार करना चाहेंगे, वे मेरे कोप के भाजन होंगे।"

इतना कहकर नारायण ने लक्ष्मी का सहारा लिया और द्वार से बाहर हो गये।

ज्येष्ठत्व - बड़े का भाव
लघुत्व - छोटे का भाव
जनन - पैदा होना
योग - मदद
निरंतर - बराबर
चौपाल - बैठकखाना
अमर-बेल - एक पीली पीली बेल जिसमें पत्ते नहीं होते और पेड़ पर फैलकर उससे रस लेकर जीती है।
रिक्त - ख़ाली
सोमरस - शराब
आदेश - आज्ञा
पार्थिव - सांस्कारिक

पुलकित होना - खुश होना
उमंगना - उमंग आना
तरल - oily thing
पकड़ - grip
पेशी - muscle
सिहरना - कांपना
तिरोहित होना - लोप होना
सुस्ताना - आराम करना
टखना - ankle
गिलगिला - चिकना, लचकदार पदार्थ जैसे नवजात बच्चा
अरूढ़िवादी - परंपरा के विरूद्ध
बिट्टो - बेटी; बच्चों का प्यार से पुकारते समय का संबोधन
लाघवता - फुर्ती
जीवन - प्राण, वायु, पानी

स्त्री-शिक्षा के उद्देश्य

श्रीमती चन्द्रावती लखनपाल, एम. ए., बी. टी., गुरुकुल, कांगड़ी

[आप यू० पी० की रहनेवाली सुसंस्कृत देवी हैं। आप गुरुकुल कांगड़ी में अध्यापिका हैं। आपने कई उपयोगी ग्रन्थ लिखे हैं। आपको लेखिका की हैसियत से कई पुरस्कार मिले हैं। स्त्री-शिक्षा पर आपने बड़े अच्छे विचारणीय विचार दिये हैं।]

प्राचीन समय में भारतवर्ष में स्त्री-शिक्षा का क्या उद्देश्य रहा होगा, इस विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। इतना तो प्राचीन इतिहासादि के पढ़ने से अवश्य ज्ञात हो जाता है कि उस समय स्त्री को ऊँची शिक्षा दी जाती थी। स्त्री और पुरुष मानसिक विकास की दृष्टि से एक ही क्षेत्र में विचरते थे। उनमें सामाजिक दृष्टि से कोई भेद-भाव न था। दोनों को स्वतंत्रता-पूर्वक रहने और आत्मिक उन्नति करने के समान रूप से साधन प्राप्त थे। स्त्री और पुरुष की स्थिति में वह विषमता न थी, जो आज पायी जाती है। इसलिए उस समय स्त्री की स्वतंत्रता व अधिकारों का तो प्रश्न ही नहीं उठ सकता था।

इसलिए स्त्री-शिक्षा का उद्देश्य भी अधिकारों की प्राप्ति, जैसा कि इस समय है, तब न रहा होगा। उस समय स्त्री का सारा ध्यान घर पर ही केन्द्रित रहा होगा और स्त्री-शिक्षा का लक्ष्य संभवतः सद्गृहिणी बनना ही रहा होगा। किंतु प्राचीन काल की गृहिणी

का कार्य-क्षेत्र घर की चहार-दीवारी तक ही सीमित रहा होगा, ऐसा नहीं कहा जा सकता। गृहिणी के रूप में भोजन बनाने-वाली स्त्री समय पड़ने पर देश का शासन-कार्य सँभाल सकती थी; बच्चों को पालनेवाली माता, समाज, जाति तथा देश-संबंधी महत्वपूर्ण प्रश्नों पर अपनी राय प्रकट कर सकती थी।

किन्तु काल की गति अद्भुत है। एक समय आया जब कि गार्गी, मैत्रेयी, सुलभा, सावित्री की सन्तान बिलकुल निरक्षरा बन गयी। भारत से स्त्री-शिक्षा का लोप हो गया। इस समय न स्त्री-शिक्षा रही, न उसका उद्देश्य। सदियाँ बीत गयीं, स्त्री निरक्षरा बनी, अविद्या के अन्धकार में व्यर्थ ही रास्ता टटोलती रही। अब से आधी सदी पूर्व तक स्त्री की यही हालत थी।

अन्त में स्वामी दयानन्द और राजा राममोहन जैसे कुछ सुधारकों के प्रयत्न से, और कुछ पश्चिम के संपर्क से, फिर भारत में स्त्री-शिक्षा का प्रारंभ हुआ। शुरू में बहुत वर्षों तक स्त्री-शिक्षा का उद्देश्य चिट्ठी-पत्री लिखना बना रहा। माता पिता अपनी लड़की को केवल इस उद्देश्य से पढ़ाते थे कि वह चिट्ठी लिख सके और ससुराल जाकर अपनी कुशलता की दो-चार टूटी-फूटी लाइनें लिख-कर माता-पिता को भेज सके। लड़की के लिये चिट्ठी लिखना-पढ़ना उस समय बड़ी बात समझी जाती थी, यह लड़की की एक बड़ी विशेषता मानी जाती थी। यदि कोई बहू लिखना-पढ़ना जानती तो मुहल्ले भर की स्त्रियाँ उसके पास चिट्ठी लिखवाने-पढ़वाने

आती थीं और इस प्रकार मुहल्ले की स्त्रियों पर उसकी धाक जम जाती थी।

किन्तु स्त्री-शिक्षा विकास की इस पहली सीढ़ी पर देर तक न रुकी। आर्थिक तथा अन्य कारणों से नवयुवकों में शिक्षा का प्रचार अति तीव्र-गति से बढ़ रहा था। नवयुवकों में शिक्षा की वृद्धि का प्रभाव स्त्री-शिक्षा पर भी पड़े बिना न रह सका। शिक्षित नवयुवक चाहता था कि वह कन्या भी, जिससे उसका विवाह हो, शिक्षिता होनी चाहिए। अभी तक एक होनहार युवक की अपनी भावी पत्नी के सम्बध में ऊँची से ऊँची कल्पना होती थी कि वह धनी घर की बेटी हो, किन्तु अब उसकी अभिलाषा हो गयी कि उसकी पत्नी धनी हो या न हो, किन्तु वह शिक्षिता अवश्य हो। नवयुवक-जगत् की इस एकसुरी माँग का प्रभाव कन्याओं की शिक्षा पर यह पड़ा कि उनकी शिक्षा माता-पिता के लिए एक आवश्यक विषय बन गया। स्वभावतः माता-पिता की यह इच्छा रहती है कि उनकी लड़की को अच्छा घर और वर मिले। जब अच्छा घर और योग्य वर मिलने की शर्त शिक्षा बन गयी तो विवश हो माता-पिता को अपनी लड़कियों को पढ़ाना पड़ा। इस प्रकार नवयुवकों की शिक्षा से जहाँ स्त्री-शिक्षा को एक प्रोत्साहन मिला वहाँ उसने स्त्री-शिक्षा का उद्देश्य भी कुछ वर्षों के लिए निश्चित कर दिया। पहले स्त्री-शिक्षा का लक्ष्य केवल चिट्ठी-पत्री लिखने की योग्यता पैदा करना रहा था, किन्तु अब यह न रहा।

इस समय स्त्री-शिक्षा का उद्देश्य विवाह-क्षेत्र में कन्याओं के मूल्य को बढ़ा देना हो गया। जो माता-पिता अपनी लड़की को मिडिल तक भी पढ़ा देते, ग़रीब होते हुए भी उन्हें अपनी लड़कियों के लिए पढ़े-लिखे कमाऊ लड़के आसानी से मिल जाते थे।

अभी कहा गया था कि नवयुवक-संसार में शिक्षा का प्रचार होने से स्त्री-शिक्षा में भी अत्यन्त वृद्धि हुई। भारत-वर्ष में इस समय जो शिक्षा की लहर आयी थी, वह पश्चिम से आयी थी। यह पश्चिमी शिक्षा भारतीय नवयुवक तथा युवतियों के लिए उपयुक्त थी या नहीं, इस पर विचार करना इस लेख का विषय नहीं। किन्तु स्वतंत्र देश से आयी हुई इस शिक्षा का प्रभाव यह अवश्य हुआ कि भारतीय नवयुवकों और विशेषकर युवतियों में स्वतंत्रता की भावनाएँ जागृत हो गयीं। अभी तक पुरुष के लिये जीना ही स्त्री का एक-मात्र धर्म था और पुरुष के अत्याचारों को सहते जाना ही उसका एक-मात्र कर्तव्य। समाज के अन्दर न उसका कोई अलग स्थान था और न पुरुष से पृथक उसकी कोई सत्ता ही थी। किन्तु यह सब होते हुए भी न तो स्त्री को अपनी अधोगति का ज्ञान था और न उस पतितावस्था से छुटकारा पाने की इच्छा ही थी। किन्तु शिक्षा पाने पर नारी का हृदय अपने ही पूर्व स्वभाव के विरुद्ध विद्रोही हो उठा। माता का उच्च स्थान रखते हुए जाति-निर्माण का भारी उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेते हुए भी समाज में उसका कोई स्थान नहीं, मनुष्य होते हुए

भी उसकी कोई पृथक सत्ता नहीं—क्या यह उचित है? अपनी स्थिति के औचित्य तथा अनौचित्य संबंधी इस प्रकार के संदेहों से उसका मन विक्षुब्ध हो उठा। उसको अपनी वास्तविक अवस्था को एक क्षण में भान हो गया। सहिष्णुता की चरम सीमा का उल्लंघन करके भी वह अपने दुखों का अंत क्यों नहीं देखती, पाषाण प्रतिमा बनकर भी उसे अत्याचारों से छुटकारा क्यों नहीं मिलता, मनुष्यता के दिव्य गुणों से युक्त होने पर भी आज उसकी गणना मनुष्यों में क्यों नहीं की जाती है—स्वतंत्र होने की योग्यता रखते हुए भी आज वह परतंत्र क्यों है—ये प्रश्न शिक्षित महिला के हृदय में उठे और अपना हल ढूँढ़ने लगे। स्त्री ने अपनी स्वतंत्रता का प्रश्न हल करने के लिए ज़मीन-आसमान ढूँढ़ डाला। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि पराधीनता का मुख्य कारण उसका आर्थिक दृष्टि से पुरुष पर अवलंबन है।

शिक्षित महिला अब किसी न किसी प्रकार अपनी वर्तमान दुरवस्था का अन्त कर देना चाहती थी। जब विचार करने पर वह इस परिणाम पर पहुँची कि आर्थिक दृष्टि से पुरुष पर आश्रित रहना ही उसकी पराधीनता का मुख्य कारण है, तो आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त करना ही उसके जीवन का लक्ष्य बन गया। जिस कारण से उसके विशिष्ट से विशिष्ट गुण भी उसकी दृष्टि में अवगुण बन जाते हैं, जिस कारण उसका महान उत्तरदायित्व ही उसकी निर्बलता का कारण बन जाता है, वह कारण क्या है? वह कारण यही तो है न,

कि पुरुष पैसा कमाकर लाता है, और स्त्री पैसा नहीं कमाती। वैसे तो यदि पुरुष बाहर काम करता है तो स्त्री घर में काम करती है, और उसका काम किसी दृष्टि से भी कम महत्व का नहीं कहा जा सकता। भेद केवल इतना ही है कि पुरुष को अपनी कमाई का पैसे के रूप में पुरस्कार मिल जाता है और स्त्री को अपनी कमाई का कोई ऐसा पुरस्कार नहीं मिलता। यदि इस पैसे में ही यह सिफ़त है कि यह अवगुणों को गुण बना सकता है, कमज़ोरियों को शक्तियों का रूप दे सकता है, अनाचार को सदाचार में पलट सकता है, कर्तव्यों को अधिकारों में परिणित कर सकता है, तो अवश्य यह वांछनीय है। इस प्रकार के तर्क-वितर्क जब शिक्षित महिला के मन में उठे, तो उसके जीवन का एक ही लक्ष्य बन गया—और वह था किसी न किसी प्रकार आर्थिक दृष्टि से पुरुष से स्वतंत्र हो जाना, अपने आप पैसा कमाना या कम से कम अपने अंदर पैसा कमाने की योग्यता प्राप्त कर लेना। इस लक्ष्य तक पहुँचने का साधन बन गयी "शिक्षा"। शिक्षा द्वारा स्त्री आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करना चाहती थी। स्त्री-शिक्षा का लक्ष्य अब तक विवाह संबंधी समस्या हल करना न रहकर स्वतंत्रता की प्राप्ति बन गया। दोनों लक्ष्यों में कितना भारी अन्तर था। एक से प्रेरित होकर अभीष्ट वर की प्राप्ति में ही अपनी शिक्षा का अंत कन्या समझ लेती थी, किंतु दूसरे की प्रेरणा से वह विवाह के नाम से ही घृणा करने लगी, वैवाहिक जीवन से ही उसे

नफ़रत हो गयी, क्योंकि यह जीवन उसे अपने स्वतंत्रता-प्राप्ति के लक्ष्य पर आघात जान पड़ता था।

स्त्री ने सोचा था कि यदि वह धनोपार्जन करने लगेगी और अपनी आवश्यकताएँ स्वयं पूरी करने लगेगी, तो उसके दुखों का अंत हो जायगा, उसको मनुष्यता के सब अधिकार प्राप्त हो जायेंगे; वह स्वतंत्रता जिसकी वह भूखी थी, स्वयं उसको मिल जायेगी। आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र होकर उसने अपने जीवन के हर क्षेत्र में स्वतंत्र होने की आशा की थी, अपने को शिक्षा तथा धन से सम्मानित करके पुरुष का सम्मान प्राप्त करने का स्वप्न देखा था। किंतु उसकी आशा पूरी न हुई, उसका स्वप्न, स्वप्न ही रहा! इतना सब कुछ होने पर भी स्त्री देख रही है कि उसने पुरुष जैसी शिक्षा चाहे क्यों न प्राप्त कर ली हो, किन्तु फिर भी वह स्त्री ही है। आज भी वह पिता के लिए 'पराये घर का धन' है; पति के लिए उसकी आँखों के इशारे पर नाचनेवाली पत्नी है; पुत्र के लिए उसके सहारे रहनेवाली वृद्धा माता है। वह शिक्षिता है तो क्या! समाज की आँखों में आज भी वह परतंत्रता में ही पनपनेवाली अबला है; घर के अंदर पति की इच्छा का पालन करनेवाली कठपुतली और बच्चों का लालन-पालन करनेवाली परिचारिका है। मनु का वह वाक्य "न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति" आज भी सजीव होकर उसके कानों में गूँज रहा है; जीवन के हर क्षेत्र में वह इन्हीं की छाप देख रही है। ऐसी अवस्था में उसे

अपने ध्येय की प्राप्ति का केवल एक मार्ग दीखता और वह है स्त्रीत्व को ही अपने अंदर से नष्ट कर देना ! वर्तमान समय में शिक्षिता नारी स्वतंत्र होने के लिए उत्सुक हो रही है। स्त्रीत्व उसके मार्ग में एक रुकावट है, विघ्न है। इसलिए अपनी स्वतंत्रता की खातिर आज वह अपने स्त्रीत्व को मिटा देगी, स्वतंत्रता की वेदी पर आज वह स्त्रीत्व का बलिदान कर देगी, किंतु संसार की आँखों में नीची बनकर न रहेगी—यही आज की शिक्षिता नारी का संकल्प दिखायी देता है। स्त्री के जीवन का लक्ष्य बहुत अंशों तक उसकी शिक्षा का लक्ष्य भी रहा है, और आज भी वही उसकी शिक्षा का उद्देश्य है। अब आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करना स्त्री-शिक्षा का उद्देश्य नहीं रहा, जैसा कि अब से कुछ वर्षों पूर्व था, अब तो पुरुष के बराबर हो जाना, हर क्षेत्र में पुरुष की बराबरी करना स्त्री-शिक्षा का लक्ष्य बन गया है।

आज शिक्षिता स्त्री के हृदय में क्या विचार उठ रहे हैं? वह सोचती है—घर के अन्दर रहकर कोल्हू के बैल की तरह पिसकर उसके हाथ क्या आया—अपमान और पराधीनता ! जिस घर में रहकर उसे आत्म-सम्मान और आज़ादी से हाथ धोना पड़ा हो उसका कार्य-क्षेत्र अब उस घर में नहीं, उस घर से बाहर होगा। उसका कार्य-क्षेत्र अदालतों, दफ़्तरों, कारखानों और सिनेमा-घरों में होगा—पुरुष का कार्य-क्षेत्र ही उसका कार्य-क्षेत्र होगा। जब स्त्री के अंदर मनुष्यता से दिव्यता की ओर ले जानेवाले गुण

मौजूद थे तब उसकी गिनती मनुष्यों से नीची होती थी, अब जब कि स्त्री ने पुरुष की श्रेणी में बैठने की शपथ ले ली है तब क्या उसे उन दिव्य गुणों को ठुकरा न देना पड़ेगा। शिक्षिता स्त्री की दृष्टि में अपने गुणों की अपेक्षा पुरुष के अवगुण अधिक अच्छे हैं; मानवीयता को चकित कर देनेवाले स्त्रीत्व की विशेषताओं की अपेक्षा पुरुष की निर्बलताएँ अधिक ग्राह्य हैं। उसके लिए 'स्त्रीत्व' और 'दासत्व' दोनों समानार्थक वस्तु हैं; इसलिए स्त्रीत्व के चिन्ह उसके दासत्व के चिन्ह हैं। वह उन सब चिन्हों को मिटा देना चाहती है, जिन्हें वह मिटा सकती है। यही कारण है कि बीसवीं शताब्दी की वेष-भूषा, रहन-सहन, आमोद-प्रमोद के तरीक़े सब पुरुष जैसे होते जा रहे हैं। वह स्त्रीत्व को मिटाने और पुरुषत्व को अपनाने में बहुत अंशों तक सफल हो रही है। स्त्रीत्व को खोकर भी वह समाज में पुरुष के बराबर स्थान प्राप्त कर सकेगी या नहीं, जिस स्वतंत्रता की वह भूखी है वह उसको मिल सकेगी या नहीं—यह अभी भविष्य के गर्भ में है।

थोड़े से समय के अंदर, हमने देखा कि स्त्री-शिक्षा के उद्देश्य ने अनेकों रूप बदले। यह भी देखा कि इन परिवर्तनों को लाने, इन उद्देश्यों को ढालने में पुरुष का कितना अधिक हाथ रहा है। वास्तव में स्त्री-शिक्षा को अपने अंतिम उद्देश्य तक पहुँचाने की पूरी ज़िम्मेदारी पुरुष पर ही है। स्त्रीत्व को मिटा देने का संकल्प, जो इस समय स्त्री-शिक्षा का उद्देश्य बन गया है,

सदियों से स्त्री पर पुरुष द्वारा किये गये अत्याचारों का परिणाम है।

किन्तु यह सब कुछ होते हुए भी क्या शिक्षिता बहिनें अपने अंतिम संकल्प की पूर्ति करने से पूर्व इस प्रश्न पर एक बार विचार करेंगी? यदि स्त्रीत्व संसार से लुप्त हो गया तो समाज की हानि होगी या लाभ? हमें तो ऐसा प्रतीत होता है कि इससे समाज तथा विश्व कल्याण नहीं हो सकता। स्त्रीत्व विश्व की एक अमूल्य विभूति है। स्त्रीत्व के नष्ट होने से एक दिव्य विभूति का संसार से लोप हो जायगा। स्त्रीत्व के लोप होने पर प्रेम, दया, श्रद्धा तथा सहिष्णुता—जो स्त्री की विशेषताएँ हैं—संसार से मिट जायँगी। स्त्रीत्व के मिटने के साथ ही मातृत्व तथा उसके अनेक आशीर्वादों से संसार वंचित रह जायगा। ऐसी दशा में विश्व में स्त्रीत्व का अभाव कल्याण-प्रद होगा या हानिप्रद—यह शिक्षिता बहिनें स्वयं विचार कर लें।

यह बहुत संभव है कि बहुत सी शिक्षित बहिनें ऊपर के विचारों से सहमत नहीं हों और मुझसे पूछें कि अछूता रखने के लिये वे घर में बैठी चूल्हा झोंका करें, पुरुष के अत्याचारों को सहा करें, क्या वे अपनी शिक्षा को, अपनी योग्यता को चहारदीवारी के अंदर ही नष्ट होती रहने दें; क्या स्त्रीत्व के ख़ातिर वे अपने व्यक्तित्व, अपनी स्वतंत्रता को न्योछावर कर दें,—इन प्रश्नों का

संक्षिप्त उत्तर तो मैंने अभी ऊपर के पैराग्राफ़ में दे दिया है। परन्तु, इन प्रश्नों पर इतने संक्षिप्त रूप में विचार नहीं हो सकता।

प्राचीन - पुराना
अवश्य - ज़रूर
ज्ञात होना - मालूम होना
विचरना - चलना-फिरना
आत्मिक - आत्मा का
विषमता - अंतर, फ़रक
केन्द्रित - जमा हुआ
संभवतः - अक्सर
सद्गृहिणी - अच्छी स्त्री
सीमित - घिरा हुआ
निरक्षरा - अपढ़
लोप होना - डूब जाना
धाक - रोब
एकसुरी - एक तरफ़ की
कमाऊ - कमानेवाले, अच्छी आयवाले
पृथक - अलग, बाहर
पतितावस्था - गिरी हुई दशा
विक्षुब्ध - परेशान

भान होना - मालूम होना
पाषाण - पत्थर
प्रतीत होना - समझ में आना
पराधीनता - गुलामी
अवलंबन - सहारा
परिणाम - नतीजा
विशिष्ट - खास
अवगुण - बुराइयाँ
सिफ़त - गुण
परिणत करना - बदलना
वांछनीय है - चाहिये
कठ-पुतली - काठ की प्रतिमा
न स्त्री स्वांत्र्यम् अर्हति - स्त्री कभी स्वतंत्र रहने योग्य नहीं।
सजीव - जानदार
ख़ातिर - वास्ते, के लिए
मानवीयता - मनुष्यत्व
विभूति - संपत्ति

परिशिष्ट

लक्ष्मी का स्वागत

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

[आप भाषा व शैली में प्रेमचन्दजी के अनुयायी हैं। उन्हीं की तरह आप अपनी कहानियों में सामाजिक चित्र उपस्थित करते हैं। अच्छे और सफल नाटककार भी हैं। आपके नाटक 'जय-पराजय,' से दक्षिण के हिन्दी प्रेमी पाठक परिचित हो ही चुके हैं। 'स्वर्ग की झलक' एक अच्छा व्यंग-चित्र है। 'प्रात-प्रदीप' आपकी कविताओं का एक सुन्दर संग्रह है। आपने 'उर्दू काव्य की कई धारा' के नाम से एक अच्छा काव्य-संग्रह संपादित किया है। रंगमंच के अनुभवी अभिनेता होने से आपके नाटक अभिनय करने लायक बने हैं। आपका 'पीपी' नामक एकांकी 'विशाल भारत' में छपा था। उसके बाद 'लक्ष्मी का स्वागत' 'हंस' के एकांकी अंक में छपा। प्रस्तुत संग्रह में यह 'लक्ष्मी का स्वागत' दिया जा रहा है। यह एक सुन्दर सामाजिक चित्र है।]

पात्र

रौशन—एक शिक्षित युवक।
सुरेन्द्र—उसका मित्र।
भाषी—उसका छोटा भाई।
अरुण—रौशन का बीमार बच्चा।
(इनके अलावा रौशन के पिता, माँ और डाक्टर)

[मध्यम श्रेणी के एक मकान का दालान। सामने दीवार से लगी मेज़; एक ओर एक पुरानी कुर्सी पड़ी है। मेज़ पर कुछ किताबें हैं। दायीं ओर खिड़की, उसपर एक छींट का पर्दा। बाईं ओर खुला दरवाज़ा।

दायीं ओर भी कमरा है जिसका दरवाज़ा आधा खुला है। अरुण पलंग पर पड़ा है। सुरेन्द्र खिड़की से बाहर की ओर देख रहा है। कमरे में रौशनलाल दाखिल होता है।]

रौशन—(दरवाज़े को धीरे से बंद करके) डाक्टर अभी तक नहीं आया ?

सुरेन्द्र—नहीं।

रौशन—वर्षा हो रही है !

सुरेन्द्र—मूसलधार ! इंद्र का क्रोध अभी शांत नहीं हुआ।

रौशन—शायद ओले पड़ रहे हैं।

सुरेन्द्र—हाँ, ओले भी पड़ रहे हैं।

रौशन—भाषी पहुँच गया होगा ?

सुरेन्द्र—हाँ, पहुँच ही गया होगा। यह वर्षा और ओले।

रौशन—लेकिन अब तक उन्हें आ जाना चाहिए था। (खिड़की का पर्दा हटाकर देखता है) अरुण की तबीयत गिर रही है।

सुरेन्द्र—(चुप)

रौशन—उसकी साँस जैसे हर घड़ी रुकती जा रही है, गला जैसे बंद होता जा रहा है, आँखें खुली हैं; पर वह कुछ कह नहीं सकता; बेहोश-सा, असहाय-सा चुपचाप बिटर-बिटर कर ताक रहा है। मेरा कलेजा मुँह को आ रहा है। क्या होने को है, सुरेन्द्र ?

सुरेन्द्र—हौसला करो! अभी डाक्टर आ जायगा। देखो, दरवाज़े पर किसी ने दस्तक दी है।

(दोनों कुछ क्षण तक सुनते हैं।)

रौशन—नहीं, हवा है।

सुरेन्द्र—(सुनकर) यह देखो, फिर किसी ने दस्तक दी। (रौशन बढ़कर खिड़की में देखता है।)

रौशन—सामने के मकान का दरवाज़ा खटखटाया जा रहा है। (बेचैनी से कमरे में घूमता है।) सुरेन्द्र, यह मामूली बुखार नहीं है। तुमने उसे नहीं देखा, साँस लेने में उसे कितना कष्ट हो रहा है! हवा की साँय-साँय, मेंह के थपेड़े, यह वर्षा, यह आँधी, कुछ अनिष्ट होने को है। प्रकृति का यह भयानक खेल, यह मौत की आवाज़ें........।

(बिजली कड़कती है। दरवाज़ा ज़रा सा खुलता है। माँ झाँकती है।)

माँ—रौशी, आओ। देखो, शायद डाक्टर आया है। (दरवाज़ा बन्द करके चली जाती है।)

रौशन—सुरेन्द्र....

[सुरेन्द्र तेज़ी से जाता है। रौशन बेचैनी से कमरे में घूमता है। सुरेन्द्र के साथ डाक्टर और भाषी प्रवेश करते हैं। भाषी के हाथ में इंजेक्शन का सामान है।]

डाक्टर—क्या हाल है बच्चे का?

(बरसाती खूँटी पर टाँगता है और रूमाल से मुँह पोंछता है ।)

रौशन—आपको भाषी ने बताया होगा। मेरा तो हौसला टूट रहा है। कल सुबह उसे ज्वर हुआ और साँस में कुछ तकलीफ़ हो गयी और आज तो वह बेहोश-सा पड़ा है, जैसे अंतिम साँसों के जाने से रोक रखने का भरसक प्रयास कर रहा है।

डाक्टर—चलो, चलकर देखता हूँ।

[सब बीमार के कमरे में चले जाते हैं। बाहर दरवाज़े के खटखटाने की आवाज़ आती है। माँ तेज़ी से प्रवेश करती है।]

माँ—भाषी! भाषी! (बीमार के कमरे से भाषी आता है।)

माँ—देखो भाषी, बाहर कौन दरवाज़ा खटखटा रहा है? (आँखों में चमक आ जाती है।) मेरा तो ख़याल है, वही लोग आये हैं। ....वही, जो सरला के मरने पर अपनी लड़की के लिए कह रहे थे। बड़े भले आदमी हैं।

[भाषी भागकर जाता है। माँ जाकर खिड़की के पास खड़ी हो जाती है। बीमार के कमरे से सुरेन्द्र तेज़ी से प्रवेश करता है।]

सुरेन्द्र—भाषी कहाँ है?

माँ—बाहर कोई आया है। दरवाज़ा खोलने गया।

[सुरेन्द्र तेज़ी से वापस चला जाता है। भाषी दाख़िल होता है।]

माँ—कौन है?

भाषी—शायद वहीं हैं। नीचे बिठा आया हूँ। पिताजी के पास तुम चलो।

माँ—क्यों ?

भाषी—उनके साथ एक स्त्री भी है।

(माँ जल्दी जल्दी जाती है)

सुरेन्द्र—(दरवाज़ा ज़रा-सा खोलकर) भाषी ! इधर आओ। (भाषी कमरे में चला जाता है। कुछ क्षण के लिए ख़ामोशी। फिर डाक्टर, सुरेन्द्र, रौशन और भाषी बाहर आते हैं।)

रौशन—बहुत नाज़ुक है ?

डाक्टर—हाँ। ....

रौशन—कुछ नहीं हो सकता ?

डाक्टर—परमात्मा के घर कुछ कमी नहीं है, लेकिन आपने बहुत देर कर दी है। खन्नाक (diphtheria) में तत्काल डाक्टर को बुलाना चाहिए।

रौशन—हमें मालूम ही नहीं हुआ, डाक्टर साहब ! कल शाम को इसे बुख़ार हो आया, गले में भी इसने बहुत कष्ट महसूस किया। शाम होते होते बेहोश-सा हो गया। मैं भागा-भागा आपके पास आया, पर आप मिले नहीं, तब रात को भाषी को भेजा। फिर भी आप न मिले। फिर यह झड़ी लग गयी। (ज़रा काँपता है) ओले, आँधी और तूफ़ान ! ऐसी वर्षा तो कभी न देखी थी।

[डाक्टर सिर नीचा किये खड़ा है; रौशन उत्सुक नज़रों से उसकी ओर ताक रहा है, सुरेन्द्र मेज़ के एक कोने पर बैठा छत की ओर देख रहा है।]

डाक्टर—(सिर उठाकर) मैंने इंजेक्शन दे दिया है। भाषी को मेरे साथ भेज दो, मैं नुस्ख़ा लिख देता हूँ; यहीं बाज़ार से मँगा लेना। पन्द्रह-पन्द्रह मिनट के बाद हलक़ में दवा की दो चार बूँदें टपकाते रहना और एक घंटे में मुझे सूचित करना। यदि एक घंटे तक यह ठीक रहा तो मैं एक इंजेक्शन और कर जाऊँगा। इंजेक्शन के सिवा डिफ़्थीरिया का दूसरा इलाज नहीं।

रौशन—डाक्टर साहब.... .... (आवाज़ भर आती है।)

डाक्टर—घबराने से काम न चलेगा, सावधानी से उसकी तीमारदारी करो; शायद ....

रौशन—मैं अपनी तरफ़ से कोई कसर न उठा रखूँगा। सुरेन्द्र, तुम मेरे पास रहना, देखो, जाना नहीं। यह घर इस बच्चे के लिए वीराना है। यह लोग इसका जीवन नहीं चाहते। बड़ा रिश्ता पाने के मार्ग में इसे रोड़ा समझते हैं। इसकी मृत्यु.... ....

डाक्टर—क्या कह रहे हो, रौशन लाल?

रौशन—आप नहीं जानते डाक्टर साहब! यह सब लोग हृदय-हीन हैं! इधर मैं अपनी पत्नी का दाह-कर्म करके आया था, उधर ये दूसरी के लिए शगुन लेने की सोच रहे थे।

सुरेन्द्र—यह तो दुनिया का व्यवहार है, भाई!

रौशन—दुनिया का व्यवहार इतना शुष्क, इतना निर्मम, इतना क्रूर है? क्या ये लोग नहीं समझते कि वह जो मर जाती है, वह भी किसी की लड़की होती है, किसी माता-पिता के लाड़ में पली होती है; फिर उनके मरते ही सगाइयाँ लेकर दौड़ते हैं। इस बात की स्मृति मात्र से मेरा ख़ून उबलने लगता है।

डाक्टर—(चौंककर) देर हो रही है, मैं दवा भेजता हूँ। (भाषी से) भाषी, चलो।

(डाक्टर साहब और भाषी का प्रस्थान।)

रौशन—सुरेन्द्र, क्या होने को है? क्या अरुण भी मुझे सरला की भाँति छोड़कर चला जायगा? इसे देखकर सरला का ग़म भूल चुका था, लेकिन अब, अब,....(हाथों से मुँह छिपा लेता है।)

सुरेन्द्र—(उसे कमरे की ओर ले जाता हुआ) पागल न बनो, चलो; उसके घर में क्या कमी है? वह चाहे तो मृतकों को जीवन प्रदान कर दे!

रौशन—(भर्राये गले से) मुझे उसपर कोई विश्वास नहीं रहा। उसका भरोसा नहीं—क्रूर, कठिन और निर्दयी! अपने इस जीवन में हमने किसको सताया, किसको दुख दिया, जो हम पर ये बिजलियाँ गिरायी गयीं, हमें इतना दुख दिया गया?

सुरेन्द्र—दीवाने न बनो, चलो; उसके सिरहाने चलकर बैठो। मैं जाकर देखता हूँ कि भाषी अभी तक क्यों नहीं आया।

(उसे दरवाज़े के अंदर ढकेलकर मुड़ता है। दाईं ओर से माँ दाखिल होती है।)

माँ—किधर चले ?

सुरेन्द्र—ज़रा भाषी को देखने जा रहा था।

माँ—क्या हाल है अरुण का ?

सुरेन्द्र—उसकी हालत खराब हो रही है।

माँ—क्या बताया डाक्टर ने ?

सुरेन्द्र—डिफ़्थीरिया।

माँ—वह क्या होता है ?

सुरेन्द्र—बड़ी खतरनाक बीमारी है, माँजी ! अच्छा भला आदमी दो-चार दिन के अंदर खत्म हो जाता है।

माँ—(काँपकर) राम-राम, तुम लोगों ने क्या कुछ का कुछ बना डाला ! उसे ज़रा ज्वर हो गया, छाती जम गयी; बस, मैं घुट्टी दे देती तो ठीक हो जाता, लेकिन मुझे कोई हाथ लगाने दे तब न ! हमें तो यह कहता है, बच्चे से प्यार ही नहीं।

सुरेन्द्र—नहीं नहीं, यह कैसे हो सकता है ? आपसे अधिक वह किसे प्यारा होगा ? (चलने को उद्यत होता है।)

माँ—सुनो !

(सुरेन्द्र रुक जाता है।)

माँ—मैं तुमसे बात करने आयी थी, तुम उसके मित्र हो, उसे समझा सकते हो।

सुरेन्द्र—कहिये।

माँ—आज वह फिर आये हैं।

सुरेन्द्र—वह कौन?

माँ—सियालकोट के एक व्यापारी हैं। जब सरला का चौथा हुआ था तो रौशन के लिए शगुन लेकर आये थे। पर वह सामने ही न आया; न जाने उसे क्या हो गया है। रौशी के पिता ने उन्हें एक महीने बाद आने को कहा था, सो पूरे एक महीने बाद आये हैं।

सुरेन्द्र—माँजी....

माँ—तुम जानते हो बच्चा! दुनियाँ-जहान का क़ायदा ही यही है। गिरे हुए मकान की नींव पर ही दूसरा मकान खड़ा होता है।

सुरेन्द्र—रौशन भी बिन-ब्याहा नहीं रहेगा, इसका मैं यक़ीन दिलाता हूँ।

माँ—यह ठीक है, पर अब यह शरीफ़ आदमी मिले हैं। घर अच्छा है, लड़की अच्छी है; सुशील सुन्दर और सुशिक्षित है; और सबसे बढ़कर यह कि ये लोग बड़े भले हैं। लड़की की बड़ी बहन से अभी मैंने बातें की हैं। ऐसी सलीक़ेवाली है कि क्या कहूँ? बोलती है तो फूल झड़ते हैं। जिसकी बड़ी बहन ऐसी है, वह स्वयं कैसे अच्छी न होगी?

सुरेन्द्र—माँजी, अरुण की तबीयत बहुत ख़राब है। जाकर देखो तो मालूम हो।

माँ—बेटा, ये भी तो इतनी दूर से आये हैं। इस आँधी और तूफान में कैसे इन्हें निराश लौटा दूँ?

सुरेन्द्र—तो आखिर आप मुझसे क्या चाहती हैं?

माँ—तुम्हारा वह मित्र है, उससे जाकर कहो कि ज़रा दो-चार मिनट जाकर उनसे बात कर ले। जो कुछ वे पूछते हों, उन्हें बता दे। इतने में मैं लड़के के पास बैठती हूँ।

सुरेन्द्र—मुझसे यह नहीं हो सकता माँजी, बच्चे की हालत ठीक नहीं है। और आप जानती हैं, वह उसे कितना प्यार करता है। भाभी के बाद उसका सब ध्यान बच्चे में केन्द्रित हो गया है। वह उसे अपनी आँखों में बिठाये रखता है, स्वयं उसका मुँह-हाथ धुलाता है, स्वयं नहलाता है, स्वयं कपड़े पहनाता है; और इस वक्त जब बच्चे की हालत ठीक नहीं, मैं उससे यह कैसे कहूँ?

[बीमार के कमरे से रोशन आता है; बाल बिखरे हुए चेहरा उतरा हुआ और आखें फटी-फटी सी।]

रौशन—सुरेन्द्र! तुम अभी यहीं खड़े हो? परमात्मा के लिए जल्दी करो, जाओ! मेरी बरसाती ले जाओ! नीचे से छतरी ले लो। देखो, भाषी आया क्यों नहीं? अरुण तो जा रहा है, प्रतिक्षण जैसे डूब रहा है!

[सुरेन्द्र एक बार खिड़की से बाहर देखता है। फिर जल्दी से निकल जाता है। माँ रौशन के पास आती है।]

माँ—क्या बात है, घबराये क्यों हो?

रौशन—माँ, उसे डिफ़्थीरिया हो गया है।

माँ—सुरेन्द्र ने बताया था। (असंतोष से सिर हिलाकर) तुम लोगों ने मिल-मिलाकर....

रौशन—क्या कह रही हो? तुम्हें अगर स्वयं कुछ मालूम नहीं तो दूसरों को तो कुछ करने दो।

माँ—चलो, मैं चलकर देखती हूँ। (बढ़ती है)

रौशन—(रास्ता रोककर) उसे बेहद तकलीफ़ है, उसका दम उखड़ रहा है, तुम कोई घुट्टी-वुट्टी की बात करोगी। तुम यहीं रहो, मैं उसे बचाने की अंतिम कोशिश करूँगा। (जाना चाहता है।)

माँ—सुनो! (रौशन मुड़ता है।)

रौशन—कहो।

माँ—(चुप)

रौशन—जल्दी जल्दी कहो, मुझे जाना है।

माँ—वे फिर आये हैं।

रौशन—वे कौन हैं?

माँ—वही सियालकोटवाले।

रौशन—(क्रोध से) उनसे कहो, जैसे आये हैं वैसे ही चले जायँ। (जाना चाहता है।)

माँ—रौशी! क्या, तू पागल है?

रौशन—मैं नहीं जानता, मैं पागल हूँ या आप! क्या

आप मेरी सूरत नहीं देखतीं ? क्या आपको इसपर कुछ दिखायी नहीं देता ? शादी, शादी, शादी ! क्या शादी ही दुनिया में सब कुछ है ? घर में बच्चा मर रहा है और तुम्हें शादी की सूझ रही है ! आखिर तुम लोगों को क्या हो गया ? वह अभी मृत्यु-शय्या पर पड़ी थी कि तुमने मेरी साली को लेकर शादी की बात चला दी ; वह मर गयी । मैं अभी रो न पाया कि तुम शगुन लेने पर ज़ोर देने लगीं । क्या वह मेरी पत्नी नहीं थी ? क्या वह कोई फालतू चीज़ थी ?

माँ—शोर मत मचाओ । हम तुम्हारे फ़ायदे की बात करते हैं । राम प्रताप....

रौशन—(चीख़कर) तुम राम प्रताप को मुझसे मिलाती हो । अनपढ़, अशिक्षित, गँवार ! उसके दिल कहाँ है ? महसूस करने का माद्दा कहाँ है ? वह जानवर है !

माँ—तुम्हारे पिता—उन्होंने भी तो पहली पत्नी की मृत्यु के दूसरे महीने ही विवाह कर लिया था....

रौशन—वे....माँ जाओ, मैं क्या कहने लगा था ?

[तेज़ी से कमरे में घुसता है और दरवाज़ा बन्द कर लेता है। हाथ में हुक्का लिये, खँखारते-खँखारते रौशन के पिता का प्रवेश ।]

पिता—रौशन क्या कहता है ?

माँ—वह तो बात भी नहीं सुनता—जाने, बच्चे की तबीयत ख़राब है ।

पिता—(खँखारकर) एक दिन में ही इतनी क्या ख़राब हो गयी? मैं जानता हूँ, यह सब बहानेबाज़ी है। (ज़ोर से आवाज़ देता है—) रौशी, रौशी!

[रौशन दरवाज़ा खोलकर झाँकता है। चेहरा पहले से भी उतरा हुआ है। आँखों रुआँसी और निगाहों में करुणा।]

रौशन—(अत्यंत थके स्वर से) धीरे धीरे बोलें, आप क्या शोर मचा रहे हैं?

पिता—इधर आओ।

रौशन—मेरे पास समय नहीं।

पिता—(चीख़कर) समय नहीं?

रौशन—धीरे बोलिये आप!

पिता—मैं कहता हूँ, वे इतनी दूर से आये हैं, तुम्हें देखना चाहते हैं, तुम जाकर उनसे ज़रा एक-दो मिनट बात कर लो।

रौशन—मैं नहीं जा सकता।

पिता—नहीं जा सकता?

रौशन—नहीं जा सकता!

पिता—तो मैं शगुन ले रहा हूं! इस वर्षा, आँधी और तूफ़ान में उन्हें अपने घर से निराश नहीं भेज सकता। घर आयी लक्ष्मी को लौटा नहीं सकता।

रौशन—(रोने की तरह हँसता हुआ) हाँ, आप लक्ष्मी को न लौटाइये। (खट से दरवाज़ा बंद कर लेता है।)

पिता—(रौशन की माँ से) इस एक महीने में हमने कितनों को इनकार किया है, पर इनको कैसे इनकार करें?

माँ—बच्चे की पूछते होंगे?

पिता—हाँ, मैंने तो कह दिया—बच्चा है, पर माँ की मृत्यु के बाद उसकी हालत ठीक नहीं रहती।

माँ—तो आप 'हाँ' कर दें।

पिता—हाँ, मैं तो शगुन ले लूँगा।

[चले जाते हैं। भाषी आकर चला जाता है। माँ खुशी से घूमती है। सुरेन्द्र प्रवेश करता है।]

सुरेन्द्र—माँजी!

माँ—क्या बात है?

सुरेन्द्र—दाने लाओ और दिये का प्रबंध करो!

माँ—क्या बात?....(आँखें फाड़कर देखती रह जाती है।)

सुरेन्द्र—अरुण इस संसार से जा रहा है!

(माँ भागकर कमरे के दरवाज़े पर जाती है। दरवाज़ा बंद है।)

माँ—रौशी!

रौशन—(अंदर से भर्राये स्वर में) क्या बात है?

माँ—दरवज़ा खोलो!

रौशन—पहले तुम लक्ष्मी का स्वागत कर लो!

माँ—रौशी!

....

माँ—रौशी !

[बाईं ओर के दरवाज़े के बाहर से खँखारने की और हुक्के की आवाज़। रौशन के पिता का प्रवेश ।]

पिता—बधाई हो, मैंने शगुन ले लिया ।

[कमरे का दरवाज़ा खुलता है। मृत बालक का शव लिये रौशन का प्रवेश ।]

रौशन—हाँ, नाचो, गाओ, बाजे बजाओ !

(पिता के हाथ से हुक्का गिर जाता है। मुँह खुला सा रह जाता है।)

पिता—मेरा बच्चा ! (वहीं बैठ जाता है।)

माँ—मेरा लाल ! (रोने लगती है।)

सुरेन्द्र— माँजी, जाकर दाने लाओ और दिये का प्रबंध करो !

—पर्दा—

बिटर-बिटर ताकना - असहाय दृष्टि से देखना

हौसला - हिम्मत, उत्साह

दस्तक देना - खटखटाना

बरसाती - बारिश में पहनी जानेवाली पोशाक (rain coat)

ख़ामोशी - चुप्पी, शांति

ख़न्नाक - गले का सांक्रामिक रोग जिसमें साँस बंद हो जाने से मृत्यु हो जाती है। (diphtheria)

झड़ी - लगातार वर्षा

नुसख़ा - दवाई का विवरण (prescription)

तीमारदारी - शुश्रूषा

शगुन लेना - विवाह की बातचीत पक्की करने की रस्म

मृतक - मरनेवाला

बिजलियाँ गिराना - तकलीफ़ें देना

दीवाना - पागल

घुट्टी - वह दवा जो बच्चों को पाचन के लिये दी जाती है।

यक़ीन - विश्वास

सलीकेवाली - चतुर, होशियार

फालतू - बेकार

महसूस करना - अनुभव करना

माद्दा - योग्यता

खँखारना - थूक या कफ बाहर निकलते वक्त गले की आवाज़

बहानेबाज़ी - हीला करना, किसी काम से दूर रहने के लिए झूठा कारण बताना

निगाह - दृष्टि

Bhawan's Sri Sankaracharya Sanskrit ... Bharatiya Vidya ...
782